युद्ध-संकट और भारत

इस पुस्तिका में ब्रिटेन के जर्मनी से युद्ध की घोषणा कर दिये जाने के बाद वायसराय द्वारा म० गांधी को बुलाये जाने से लगाकर २६ जनवरी (स्वाधीनता-दिवस) तक के समय में दिये गए म० गांधी, राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि के लेख, वक्तव्य तथा कांग्रेस-कार्यसमिति और महासमिति के विविध वक्तव्य और प्रस्ताव हैं। मौजूदा यूरोपीय युद्ध में भारत किन शर्तों पर अपनी नैतिक सहायता दे सकता है, इस प्रश्न पर भी यह पुस्तिका प्रकाश डालती है।

—प्रकाशक

स्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

चार आना

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

युद्ध-संकट और भारत

महात्मा गांधी, राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू, पंडित जवाहरलाल नेहरू आदि के वक्तव्य और कांग्रेस कार्यसमिति के प्रस्ताव

संपादक

श्री यशपाल बी. ए., एल-एल. बी.

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

संस्करण
२६ जनवरी १९४० : ५०००
दाम
चार आना

मुद्रक,
एस. एन. भारती,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

युद्ध-संकट और भारत

: १ :

समझौते का कोई प्रश्न ही नहीं

[ब्रिटिश सरकार द्वारा जर्मनी के साथ युद्ध की घोषणा कर दी जाने के बाद वायसराय के निमन्त्रण पर ४ सितम्बर १९३९ को महात्मा गांधी ने शिमला में वायसराय से मुलाक़ात की। मुलाक़ात के बाद शिमला से ५ सितम्बर को महात्माजी ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया--सं०]

"जिस समय मैं दिल्ली से कालका के लिए गाड़ी पर सवार हो रहा था उस समय एक भारी भीड़ ने सद्भाव से 'महात्मा गांधी की जय' के साथ-साथ यह भी नारा लगाया कि 'हम समझौता नहीं चाहते।'

"मेरा साप्ताहिक मौन था, इसलिए मैं केवल मुस्कराकर रह गया। मेरे पास गाड़ी के पायदान पर खड़े हुए लोगों ने भी मेरी मुस्कराहट के जवाब में मुस्करा दिया और सलाह दी कि मैं वायसराय महोदय से समझौता न करूँ।

"मुझे एक कांग्रेस कमेटी ने भी पत्र द्वारा ऐसी ही चेतावनी दी थी। इन चेतावनी देनेवालों में से कोई भी मुझे नहीं पहचानता। मुझे अपनी सीमित शक्ति का ज्ञान कराने के लिए चेतावनी की ज़रूरत नहीं थी। दिल्ली के प्रदर्शन और कांग्रेस की चेतावनी के अतिरिक्त यह बता देना मेरा फ़र्ज़ है कि वायसराय महोदय से बातचीत में क्या कहा-सुना गया। मैं यह बात भलीभाँति जानता था कि इस सम्बन्ध में कांग्रेस कार्यसमिति ने मुझे कोई अधिकार नहीं दिया, न कोई आदेश ही दिया है। मैं तार द्वारा भेजे गये निमन्त्रण को स्वीकार करके पहली गाड़ी से रवाना हो गया था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मेरी अदम्य और पूर्ण अहिंसा मेरे साथ थी। मैं जानता था कि राष्ट्रीय माँग का प्रतिनिधित्व करने का मुझे अधिकार नहीं, और मैंने ऐसा किया तो दुर्गति होगी। इतनी बात मैंने वायसराय महोदय को भी बता दी थी। ऐसी स्थिति में मुझसे समझौता या समझौते की बातचीत का कोई सवाल ही नहीं हो सकता। मुझे यह मालूम नहीं हुआ कि उन्होंने मुझे समझौते की बातचीत के लिए बुलाया है। मैं वायसराय महोदय के स्थान से खाली हाथ लौटा हूँ। मुझसे स्पष्ट या गुप्त कोई समझौता नहीं हुआ। अगर कोई समझौता होगा, तो वह कांग्रेस और सरकार के बीच होगा।

"कांग्रेस-सम्बन्धी अपनी स्थिति को वायसराय महोदय से स्पष्ट करते हुए मैंने उन्हें बताया कि मानवता के दृष्टिकोण से मेरी अपनी सहानुभूति इंग्लैण्ड और फ्रांस

के साथ है। जो लंदन अबतक अभेद्य समझा गया है उसके विध्वंस होने की बात सोचते मेरा दिल दहल जाता है। जब मैंने पार्लमेण्ट-भवन और वेस्ट मिन्स्टर ऐबे तथा उनके सम्भव विध्वंस के बारे में सोचा तो मेरा दिल भर आया। मैं अधीर हो गया। हृदय के अन्दर मेरी परमात्मा से इस प्रश्न पर हमेशा लड़ाई रहती है कि वह ऐसी बातें क्यों होने देता है। मुझे अपनी अहिंसा बिलकुल नपुंसक मालूम पड़ती है। परन्तु दिनभर के संघर्ष के बाद यह उत्तर मिलता है कि न तो ईश्वर ही और न मेरी अहिंसा ही नपुंसक है। नपुंसकता तो आदमी में है। चाहे मुझे अपनी कोशिश में असफलता मिले, परन्तु पूरे विश्वास के साथ मुझे अहिंसा का प्रयोग करते ही रहना चाहिए। मैंने २३ जुलाई को एबटाबाद से, मानों इसी मानसिक व्यथा के पूर्वाभास को पाकर, हेर हिटलर के पास निम्न पत्र भेजा था—

"'मेरे मित्र मुझसे कह रहे हैं कि मानव-जाति की खातिर मैं आपको पत्र लिखूँ। लेकिन इस खयाल से कि मेरे द्वारा भेजा गया पत्र गुस्ताखी में शुमार होगा, मैंने उनकी प्रार्थना न मानी। लेकिन कोई शक्ति मुझसे कहती है कि मुझे विचार नहीं करना चाहिए, और अपील का कुछ भी नतीजा हो, मुझे आपसे अपील करनी ही चाहिए। यह स्पष्ट है कि आज आप ही विश्व में एक ऐसे व्यक्ति हैं जो युद्ध को रोक सकते हैं। युद्ध होने पर यह सम्भव है कि मानवता क्षीण होकर बर्बरता में परिवर्तित हो जाय। क्या आप एक वस्तु के लिए, जिसे आप कितनी भी बहुमूल्य क्यों न समझते हों, यह मूल्य देंगे ही ? क्या आप एक ऐसे आदमी की अपील को सुनेंगे जिसने ख़ुद ही जान-बूझकर लड़ाई को छोड़ दिया है और उसे काफ़ी सफलता भी मिली है ? पत्र लिखकर यदि मैंने कोई भूल की हो, तो मैं आशा करता हूँ कि आप मुझे क्षमा करेंगे।'

"क्या ही अच्छा होता कि हेर हिटलर अब भी विवेक से काम लेते तथा तमाम समझदार आदमियों की अपील, जिनमें जर्मन भी हैं, सुनते। मैं यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूँ कि, आदमी की अमानवीय चाल द्वारा विध्वंस के डर से लंदन जैसे भारी शहरों के खाली होने की बात जर्मन लोग शान्त रहकर सोच सकते होंगे। वे शान्ति के साथ इस प्रकार के अपने और अपने स्मारकों के विध्वंस की बात नहीं सोच सकते। इसलिए इस अवसर पर मैं भारत के स्वराज्य की बात नहीं सोच रहा हूँ। भारत में स्वराज्य होगा। लेकिन अगर इंग्लैण्ड और फ्रांस का ध्वंस हो गया या उन्हें बरबाद जर्मनी के ऊपर विजय मिल गई, तो उसका क्या मूल्य होगा ? मालूम ऐसा ही पड़ता ह कि जैसे हिटलर किसी परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते और केवल पशुबल को ही मानते हैं। मि० चेम्बरलेन के कथनानुसार वह बलप्रयोग के सिवा किसी युक्ति की परवा नहीं करते। ऐसी आफत के समय में काँग्रेसियों तथा भारत के समस्त नेताओं को व्यक्तिगत रूप से तथा सामूहिक रूप से भारत का कर्तव्य निर्धारित करना है।"

'हरिजन सेवक', ९ सितम्बर, १९३९

: २ :

मेरी सहानुभूति का आधार

[वायसराय की मुलाक़ात के बाद शिमला से ५ सितम्बर को दिये गए अपने वक्तव्य पर हुई टीका-टिप्पणियों पर महात्मा गांधी का निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुआ—सं०]

''वायसराय की मुलाक़ात के बाद मैंनें जो वक्तव्य दिया, उसपर अच्छे-बुरे दोनों ही तरह के खयालात ज़ाहिर किये गए हैं। एक आलोचक ने उसे भावुकतापूर्ण बकवास कहा है तो दूसरे ने उसे राजनीतिज्ञतापूर्ण घोषणा बतलाया है। दोनों अतियों में बड़ा फ़र्क है। मैं समझता हूँ कि अपने-अपने दृष्टिकोण से सभी आलोचकों का कहना ठीक है, लेकिन उसके लेखक के पूरे दृष्टिकोण से वे सभी ग़लती पर हैं। उसने तो सिर्फ़ अपने सन्तोष के लिए ही वह लिखा था। उसमें मैंने जो कुछ कहा है उसके हरेक शब्द से मैं बँधा हुआ हूँ। हरेक मानवतापूर्ण सम्मति का जो राजनैतिक महत्व होता है, उसके अलावा और कोई राजनैतिक महत्व उसका नहीं है। विचारों के पारस्परिक सम्बन्ध को नहीं रोका जा सकता।

''एक सज्जन ने तो उसके ख़िलाफ़ बड़ा जोशीला पत्र मेरे पास भेजा है। उन्होंने उसका जवाब भी माँगा है। मैं उस पत्र को उद्धृत नहीं करूँगा, क्योंकि उसके कुछ अंश खुद मेरी ही समझ में नहीं आये। लेकिन उसका भाव समझने में मुश्किल नहीं है। उसकी मुख्य दलील यह है—'अगर इंग्लैण्ड के पार्लमेण्ट-भवन और वेस्टमिंस्टर ऐबे के सर्वनाश की सम्भावना पर आप आँसू बहाते हैं, तो जर्मनी के प्राचीन स्मारकों के सर्वनाश की सम्भावना पर आपके आँसू क्यों नहीं निकलते? और इंग्लैण्ड व फ्रांस से ही आप क्यों सहानुभूति रखते हैं? जर्मनी से आपको सहानुभति क्यों नहीं ह? क्या हिटलर जर्मनी के उस पददलन का ही जवाब नहीं है, जो कि पिछले युद्ध के बाद मित्र-राष्ट्रों ने उसका किया था? अगर आप जर्मन होते, हिटलर की सी साधनसम्पन्नता आपके पास होती, और सारी दुनिया की तरह आप भी बदला लेने के सिद्धान्त में विश्वास करते होते तो जो हिटलर कर रहा है वही आप भी करते। नाज़ीवाद बुरा हो सकता है। दरअसल वह क्या है, यह हम नहीं जानते। हमें जो साहित्य मिलता है, वह इकतरफ़ा है। लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि चेम्बरलेन और हिटलर में कोई फ़र्क नहीं है। हिटलर की जगह चेम्बरलेन होते, तो वह भी इससे अन्यथा न करते। हिटलर के बारे में विशेष न जानते हुए भी उसकी चेम्बरलेन से तुलना करके उसके साथ आपने अन्याय किया है। इंग्लैण्ड ने हिन्दुस्तान में जो-कुछ किया, वह क्या किसी तरह भी उससे अच्छा है, जो कि ऐसी परिस्थितियों में दुनिया के दूसरे हिस्से में हिटलर ने किया है? हिटलर तो पुराने साम्राज्यवादी इंग्लैण्ड और

फ्रांस का एक बालशिष्य-मात्र है। मैं समझता हूँ कि वायसराय-भवन में भावुकता ने आपकी बुद्धि को दबा लिया था।'

"इंग्लैण्ड के कुकृत्यों का, सचाई का खयाल रखते हुए, मैंने जितने ज़ोरों से वर्णन किया है उतने ज़ोरों से शायद और किसीने नहीं किया। इसी तरह जितने प्रभावकारक रूप में, मैंने इंग्लैण्ड का विरोध किया है, उतने प्रभावकारक रूप में शायद और किसीने नहीं किया। यही नहीं, बल्कि मुकाबिले की इच्छा और शक्ति भी मुझमें ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। लेकिन कोई वक्त बोलने और काम करने का होता है तो कोई वक्त ऐसा भी होता है जब खामोशी और अकर्मण्यता धारण करनी पड़ती है।

"सत्याग्रह के कोष में कोई शत्रु नहीं है। लेकिन सत्याग्रहियों के लिए नया कोष तैयार करने की मुझे कोई इच्छा नहीं है, इसलिए मैं पुराने शब्दों का ही नये अर्थ में प्रयोग करता हूँ। सत्याग्रही अपने कहे जानेवाले शत्रु के साथ अपने मित्र-जैसा ही प्रेम करता है। क्योंकि उसका कोई शत्रु नहीं होता। सत्याग्रही याने अहिंसा का उपासक होने के नाते मुझे इंग्लैण्ड के भले की ही इच्छा करनी चाहिए। फ़िलहाल जर्मनी-सम्बन्धी मेरी इच्छाओं का कोई सवाल नही है। लेकिन अपने वक्तव्यों के कुछ शब्दों में मैंने यह बात कही है कि विध्वस्त जर्मनी की राख पर मैं अपने देश की आज़ादी का महल खड़ा नहीं करना चाहता। जर्मनी के पुराने स्मारकों के सर्वनाश की संभावना से भी शायद मैं उतना ही विचलित होजाऊँ। हेर हिटलर को मेरी सहानुभूति की कोई ज़रूरत नहीं है। वर्तमान गुण-दोषों को देखने के लिए इंग्लैण्ड के पिछले कुकृत्यों और जर्मनी के पिछले सुकृत्यों का उल्लेख अप्रासंगिक है। सही हो या ग़लत, इस बात का कोई खयाल न करते हुए कि इससे पहले ऐसी ही हालतों में अन्य राष्ट्रों ने क्या किया, मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि इस युद्ध की ज़िम्मेदारी हेर हिटलर पर ही है। उनके दावे के बारे में मैं अपना कोई निर्णय नहीं देता। यह बहुत मुमकिन है कि डानज़िग को जर्मनी में मिलाने का, अगर डानज़िग-निवासी जर्मन अपने स्वतंत्र दर्जे को छोड़ना चाहें, उनका अधिकार असन्दिग्ध हो। यह हो सकता है कि कोराइडर को अपने कब्ज़े में करने का भी उनका दावा ठीक हो। पर मेरी शिकायत तो यह है कि वह एक स्वतंत्र न्यायालय के द्वारा इस दावे की जाँच क्यों नहीं होने देते? अपने दावे का पंचों से फ़ैसला कराने की बात को अस्वीकार कर देने का यह कोई जवाब नहीं है कि ऐसे ज़रियों के द्वारा यह बात उठाई गई है जिनका इसमें स्वार्थ है। क्योंकि ठीक रास्ते पर आने की प्रार्थना तो कोई चोर भी अपने साथी चोर से कर सकता है। मैं समझता हूँ कि मैं यह कहने में कोई ग़लती नहीं करता कि हेर हिटलर अपनी माँग की एक निष्पक्ष न्यायालय द्वारा जाँच होने दें। उन्होंने जो तरीक़ा इख्तियार किया है उसमें उन्हें सफलता हो गई तो वह उनके दावे की न्यायोचितता का सबूत नहीं होगी। वह तो इसी बात का सबूत होगी कि अभी मानवी मामलों में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का न्याय ही एक बड़ी ताक़त है। साथ ही वह इस बात का भी सबूत होगी कि हम मनुष्यों ने यद्यपि अपना रूप तो बदल दिया है, पर पशुओं

के तरीक़ों को नहीं बदला है ।

"मैं आशा करता हूँ कि आलोचकों को अब यह स्पष्ट होगया होगा कि इंग्लैण्ड और फ्रांस के ति मेरी सहानुभूति मेरे आवेश या उन्माद के प्रमाद का परिणाम नहीं है। वह तो अहिंसा के उस कभी न सूखनेवाले फव्वारे से निकली है, जिसे पिछले पचास सालों से मेरा हृदय पोसता आया है । मैं यह दावा नहीं करता कि मेरे निर्णय में कोई ग़लती नहीं हो सकती । मैं तो सिर्फ़ यही दावा करता हूँ कि इंग्लैण्ड और फ्रांस के प्रति मेरी सहानुभूति है, वह युक्तियुक्त है । जिस आधार पर मेरी सहानुभूति है उसे जो लोग स्वीकार करते हैं उन्हें मैं अपना साथ देने के लिए आमंत्रित करता हूँ । यह दूसरी बात है कि उसका रूप क्या होना चाहिए । अकेला तो मैं केवल प्रार्थना ही कर सकता हूँ । वायसराय से भी मैंने यही कहा है कि युद्ध में प्रवृत्त लोगों को सर्वनाश का जो मुक़ाबिला करना पड़ रहा है उसके सामने मेरी सहानुभूति का कोई ठोस मूल्य नहीं है ।"

'हरिजन-सेवक', १६ सितम्बर, १९३९

: ३ :

कांग्रेस-कार्यसमिति का युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव

[कांग्रेस-कार्यसमिति ने अपनी वर्धा की बैठक में युद्ध-सम्बन्धी निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया —सं०]

"यूरोप में लड़ाई की घोषणा के कारण जो विषम संकटापन्न परिस्थिति पैदा हो गई है, उस पर कार्यसमिति ने अच्छी तरह विचार किया । युद्ध के समय राष्ट्रों को जिन उसूलों के अनुसार काम करना चाहिए, उनकी चर्चा काँग्रेस ने बराबर की है, और अभी केवल एक ही महीना हुआ है जब कि इस कमेटी ने उन उसूलों को दोहराया था और हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सरकार ने जिस तरह भारतीय लोकमत की उपेक्षा की, उस पर कमेटी अपनी नाराज़ी भी ज़ाहिर कर चुकी है । ब्रिटिश सरकार की इस नीति से अपने को अलग रखने के लिए काँग्रेस ने पहला कदम यह रक्खा कि उसने केन्द्रीय धारा सभा के काँग्रेसी सदस्यों को सभा के अगले अधिवेशन में जाने से मना कर दिया । उसके बाद ब्रिटिश सरकार ने भारत को एक 'युद्ध में शामिल' राष्ट्र घोषित कर दिया, आर्डीनेन्स जारी कर दिये, "गवर्नमेण्ट ऑव इंडिया एक्ट-संशोधन-बिल" पास किया और ऐसी कई व्यवस्थायें कीं, जिनका असर हिन्दुस्तान की जनता पर पड़ता है और जिनसे प्रान्तीय सरकारों के कार्य परिमित हो जाते हैं । यह सब हिन्दुस्तान की जनता से बग़ैर पूछे ही किया गया । भारतीय प्रजा ऐसे मामलों में अपनी जिन इच्छाओं को घोषित कर चुकी है उनकी ब्रिटिश सरकार ने जान बूझकर उपेक्षा की है । कार्य-समिति इन सब परिस्थितियों को बहुत ही गम्भीरता से ग्रहण करेगी । कांग्रेस ने अक्सर फ़ासिज्म और नाज़ीवाद के सिद्धान्तों और उनके युद्ध और हिंसा-प्रेम की निन्दा

की है, जिनके ज़रिये मानवता का दलन होता है। कांग्रेस ने उनके आक्रमण करने की चेष्टा और उग्रता का विरोध किया है, और सभ्य संसार के माने हुए व्यवहार को जिस तरह उन्होंने ठुकराया है, उसकी भी कांग्रेस ने निन्दा की है। काँग्रेस नें अक्सर फ़ासिज्म और नाज़ीवाद में साम्राज्यवादी सिद्धान्तों को देखा, जिनके विरुद्ध भारतवासी खुद लड़ाई जारी किये हुए हैं। इसलिए कार्यसमिति जर्मनी की नाज़ी सरकार के ताज़े हमले की बिना संकोच निन्दा करते हुए पोलेण्ड के साथ हमदर्दी रखती है, जो इस समय नाजियों का मुकाबिला कर रहा है।

''कांग्रेस ने यह कह दिया है कि हिन्दुस्तान के लिए युद्ध या शान्ति-सम्बन्धी बातों का निर्णय करनेवाला खुद हिन्दुस्तान है। और कोई भारतीय अधिकारी यह निर्णय हिन्दुस्तान पर नहीं लाद सकता और न भारतवासी इसकी इजाज़त ही देंगे कि उनके साधनों से साम्राज्यवादी उद्देश्य पूरे किये जायँ। अगर भारतवासियों पर वैसा कोई निर्णय लादा गया या उसकी मंजूरी के बग़ैर भारतीय साधनों से काम लिया गया, तो वे इसका निश्चय ही विरोध करेंगे। अगर एक अच्छे उद्देश्य के लिए सहयोग प्राप्त करनें की इच्छा है तो ऐसा सहयोग जबर्दस्ती नहीं पाया जा सकता और बाहरी अधिकारियों द्वारा प्रकाशित की गई आज्ञाओं को कमेटी पूरा नहीं होने दे सकती। सहयोग तो बराबरवालों में होना चाहिए, जिसमें एक-समान उद्देश्य को पूरा करने के लिए दोनों पारस्परिक स्वीकृति से काम करें। भारतीय जनता ने इधर हाल में बहुत बड़े जोखिम का सामना किया, और उसने अपनी स्वतन्त्रता तथा हिन्दुस्तान में लोकतन्त्र स्थापित करनें के लिए बहुत बड़ी कुर्बानी की। हिन्दुस्तानियों की सहानुभूति पूरेतौर से लोकतन्त्रवाद और स्वतन्त्रता के साथ है, पर हिन्दुस्तान ऐसे किसी युद्ध में शरीक नहीं हो सकता, जिसके बारे में यह कहा जाय कि वह युद्ध लोकतन्त्रवाद और स्वतन्त्रता के लिए लड़ा जारहा है, जबकि वही स्वतन्त्रता हिन्दुस्तान को नहीं मिल रही है, और जो थोड़ी-सी सीमित स्वतन्त्रता मिली भी है वह भी उससे छीन ली गई है।

''कार्यसमिति यह जानती है कि ग्रेटब्रिटेन और फ़्रांस की सरकारों ने यह ऐलान किया है कि वे लोकतन्त्रवाद और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जर्मनी से लड़ रही हैं, और वे आक्रमण तथा उद्दंडता का खात्मा कर देना चाहती हैं। पर हाल के इतिहास में ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जिनसे मालूम होता है कि कहे हुए शब्दों, घोषित आदर्शों और असली उद्देश्यों में बहुत फ़र्क होता है, जैसा कि सन् १९१४-१८ के महायुद्ध से प्रकट हो चुका है। युद्ध के उद्देश्य घोषित किये गये थे कि लोकतन्त्रवाद, आत्म-निर्णय और छोटे-छोटे राष्ट्रों की स्वतन्त्रता की रक्षा करना मुख्य काम है, पर जिन राष्ट्रों ने उन उसूलों की घोषणा की, उन्होंने ही तुर्की के साम्राज्य को खतम कर देनें के लिए गुप्त संधियां की थीं। उन राष्ट्रों ने उस समय यह कहा था कि वे कोई राज्य नहीं लेना चाहते, पर तो भी विजयी राष्ट्रों (फ़्रांस और इंग्लैण्ड) ने बहुत बड़े देश अपनें औपनिवेशिक साम्राज्य में मिला लिये।

''वर्तमान युद्ध से भी यह मालूम होता है कि वर्साई-सन्धि किस तरह विफल हुई और उस सन्धि के निर्माताओं ने अपने वादे तोड़कर साम्राज्यवादी संधि को किस तरह पराजित राष्ट्रों पर लागू किया। उस सन्धि के द्वारा एकमात्र आशा की झलक राष्ट्र-संघ से ज़ाहिर हुई थी, पर उस संघ को कायम करनेवाले राष्ट्रों (फ्रांस और इंग्लैण्ड) ने ही उसे अन्त में खत्म कर डाला।

''हाल के इतिहास से ही यह मालूम होता है कि किस तरह घोषित सिद्धान्त खुद भंग किये जा सकते हैं। मंचूरिया में ब्रिटिश सरकार ने जापान के आक्रमण को उत्तेजन दिया। एबिसीनिया में उसने इटली की सत्ता मान ली, चेकोस्लोवाकिया और स्पेन में लोकतन्त्रवाद खतरे में था और वहां जान-बूझकर लोकतन्त्रवाद को धोखा दिया गया और सामूहिक रक्षा की सम्पूर्ण पद्धति को उन्हीं राष्ट्रों नें नष्ट किया, जिन्होंने कि उसमें अपना पुख्ता विश्वास प्रकट किया था।

''यह फिर घोषणा की गई है कि लोकतन्त्रवाद खतरे में है और उसकी जरूर रक्षा की जानी चाहिए। इस वक्तव्य से कार्यसमिति की पूरी सहानुभूति है। समिति का विश्वास है कि यूरोप की जनता पर इस आदर्श और उद्देश्य का अच्छा असर पड़ेगा और इसके लिए वे आत्म-त्याग करने को भी तैयार होंगे। पर जनता के आदर्शों और उद्देश्यों की बार-बार उपेक्षा की गई और उन्हें भंग किया गया। अगर इस युद्ध के ज़रिये साम्राज्यवादी राष्ट्रों का अपनी मौजूदा स्थिति (याने उनके साम्राज्य) और स्वार्थों की रक्षा करने का हेतु है तो हिन्दुस्तान ऐसे युद्ध से कुछ भी वास्ता नहीं रख सकता। पर अगर उसके ज़रिये लोकतन्त्रवाद और उसके आधार पर विश्व के नियम की रक्षा करनी है तो हिन्दुस्तान का इस युद्ध से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कार्यसमिति को इसका निश्चय है कि भारतीय लोकतन्त्रवाद के स्वार्थों का संघर्ष ब्रिटिश लोक-तन्त्रवाद या विश्व-लोकतन्त्रवाद से नहीं होता। अगर ब्रिटेन लोकतन्त्रवाद की रक्षा करनें और उसे बढ़ाने के लिए लड़ रहा है तो उसे चाहिए कि पहले अपने अधिकार के साम्राज्यवाद का अन्त करे, और हिन्दुस्तान में पूर्णरूप से लोकतन्त्रवाद स्थापित करे तथा आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के अनुसार भारतीय प्रजा को एक विधान-पंचायत के द्वारा अपना विधान बनानें का अधिकार दिया जाय। भारत अपनी ही नीति का संचालन करे, और इन कार्यों में किसी भी बाहरी अधिकारी का हाथ न हो। स्वतन्त्र लोकतन्त्रवादी हिन्दुस्तान खुशी से दूसरे राष्ट्रों के साथ खतरे का सामना करने के लिए तैयार रहेगा और वह दूसरे राष्ट्रों से आर्थिक सहयोग भी करेगा। तब भारत स्वतन्त्र और लोकतन्त्रवाद के आधार पर संसार के सच्च निर्माण में हिस्सा लेगा और मानव-जाति की उन्नति के लिए वह संसार के ज्ञान और साधनों से काम लेगा।

''इस समय यूरोप पर जो विषम संकट आया हुआ है वह केवल यूरोप का ही नहीं, सारी मानव-जाति का है और इन युद्धों की तरह यह संकट इस तरह नहीं टल जायगा कि मौजूदा संसार की पद्धति बनी रहे। हो सकता है कि इस युद्ध से कुछ भला हो। इस समय जो राजनैतिक, सामाजिक या आर्थिक संघर्ष हैं, ये सब गत महा-

युद्ध के परिणाम हैं। गत महायुद्ध से सामाजिक और आर्थिक संघर्ष बहुत बढ़ गये और जबतक ये संघर्ष दूर न होंगे, संसार में निश्चयात्मक रूप से कोई नियम या संगठन भी न होगा। उस संगठन या सामंजस्य का आधार यही हो सकता है कि एक देश की दूसरे देश पर प्रभुता न हो और न शोषण हो, और सब की भलाई के लिए न्यायपूर्ण आधार पर राष्ट्रों के आर्थिक सम्बन्ध का फिर से संगठन हो। हिन्दुस्तान इस समस्या की एक कसौटी है और आधुनिक प्रणाली का साम्राज्यवाद हिन्दुस्तान में क़ायम है और इस जरूरी समस्या के सुलझाने का जबतक प्रयत्न न होगा तबतक संसार का कोई पुनःसंगठन सफल भी न होगा। भारत के साधन असीम हैं और वह अपने इन साधनों से विश्व-रचना की किसी भी योजना में महत्वपूर्ण काम कर सकता है। युद्ध के सम्बन्ध में काँग्रेस के निर्णय में अधिक देरी नहीं की जा सकती, क्योंकि भारत का सम्बन्ध नित्य की नीति से है जिसे वह मंजूर नहीं करता। इसलिए समिति ब्रिटिश सरकार से कहती है कि वह साफ़ घोषणा कर दे कि लोकतन्त्रवाद और साम्राज्यवाद के सिलसिले में युद्ध-सम्बन्धी उसके क्या उद्देश्य हैं और हिन्दुस्तान पर उन उद्देश्यों को मौजूदा स्थिति में किस तरह लागू किया जायगा। समिति ने युद्ध की विभीषिकाओं का ज़िक्र करते हुए कहा है कि यूरोप और चीन में उन विभीषिकाओं को रोकना चाहिए, किन्तु फासिस्टवाद और साम्राज्यवाद के दूर होने पर ही वे विभीषिकायें भी दूर होंगी। उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए समिति अपना सहयोग प्रदान करती है।

"मगर हिन्दुस्तान जिसने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनी शक्तियाँ बहुत खर्च की हैं, ऐसा आज़ाद राष्ट्र होकर ही कर सकता है। स्वतन्त्रता इस समम अविभाज्य है और संसार के किसी भी भाग पर साम्राज्यवादी प्रभुता क़ायम रखने के हरेक प्रयत्न का परिणाम नया संकट पैदा करना होगा। कार्यसमिति ने इस बात को नोट किया है कि बहुत-से देशी नरेशों ने यूरोप में जनसत्ता की रक्षा के लिए अपनी सारी सेवायें व अपने राज्य के तमाम साधन समर्पित करने के आश्वासन दिये हैं। अगर देशी नरेशों को विदेशों में जनसत्ता की रक्षा का पक्ष ग्रहण करना है तो समिति की यह तजवीज़ है कि पहले उनका काम यह होना चाहिए कि वे अपनी रियासतों के अन्दर जनसत्ता क़ायम करें, जहाँ कि इस समय निरंकुशता के लिए ख़ुद देशी नरेशों की अपेक्षा ब्रिटिश सरकार जिम्मेदार है, जैसा कि पिछले साल के अन्दर दुःख के साथ साफ़ दिखाई दिया है। उसकी यह नीति जनसत्ता और संसार की नई व्यवस्था के ख़िलाफ़ है, जिसके लिए ग्रेट ब्रिटेन का यह दावा है कि वह उसके लिए यूरोप में लड़ाई लड़ रहा है। कार्यसमिति यूरोप, अफ़्रीका और एशिया की पिछली घटनाओं पर और खास भारत की गुज़री और मौजूदा घटनाओं पर नज़र डालते हुए यह देख रही ह कि जनसत्ता या आत्म-निर्णय के हित को आगे बढ़ाने का कोई यत्न नहीं हो रहा है और न यही दिखाई देता है कि ब्रिटिश सरकार ने जिन उसूलों के लिए लड़ाई का ऐलान किया है, उनपर अमल हो रहा है या अमल होने जा रहा है। जनसत्ता का

सच्चा उपाय साम्राज्यवाद या फासिज्म का अन्त करना है और उस आक्रमण का भी, जिसका कि इन वादों के साथ भूत और वर्तमान समय में साथ रहा है। केवल इसी आधार पर नई व्यवस्था के लिए कार्यसमिति हर तरह से सहायता देने के लिए उत्सुक है। पर समिति ऐसी किसी भी लड़ाई में सहयोग या सहायता नहीं दे सकती, जो साम्राज्यवादी तरीक़े पर चलाई जाती है और जिसका उद्देश्य हिन्दुस्तान व दूसरे स्थानों में साम्राज्यवाद का बल बढ़ाना है। लेकिन समय की गम्भीरता और इस बात को देखते हुए कि पिछले कुछ दिनों के अन्दर घटनायें मनुष्य के दिमाग़ की चाल से भी अधिक तेज़ी से घटित हो रही हैं, कार्यसमिति इस वक्त कोई आखिरी निर्णय नहीं करना चाहती, ताकि इस बात की पूरी व्यवस्था हो जाय कि हिन्दुस्तान की मौजूदा और आनेवाली स्थिति के सम्बन्ध में असली उद्देश्य क्या हैं। पर निर्णय बहुत दिनों तक नहीं टाला जा सकता, क्योंकि हिन्दुस्तान ऐसी नीति में रोज़-ब-रोज़ फँसता जा रहा है जिसके पक्ष में वह नहीं है और जिसको वह नापसन्द करता है। इसलिए कार्यसमिति ब्रिटिश सरकार से कहती है कि वह साफ़-साफ़ शब्दों में यह ऐलान करदे कि जनसत्ता और साम्राज्यवाद के बारे में संसार की नई व्यवस्था में उसके युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्य क्या हैं और हिन्दुस्तान के प्रति ये उद्देश्य किस तरह अमल में लाये जायँगे और इस समय इनपर किस तरह अमल होगा। क्या उसके उद्देश्यों में यह भी है कि हिन्दुस्तान से साम्राज्यवाद हटा दिया जाय और उसके साथ एक स्वतन्त्र राष्ट्र का-सा व्यवहार किया जाय, जिसकी कि नीति उसकी जनता की इच्छा के अनुकूल चलेगी?

"भविष्य के लिए अगर सरकार साम्राज्यवाद और फासिस्टवाद का खात्मा करने के लिए घोषणा कर दे तो इसे सभी देशों की जनता पसन्द करेगी। पर ज़रूरी यह है कि इसका तुरन्त अधिक-से-अधिक पालन किया जाय, क्योंकि तभी लोगों को यह विश्वास होगा कि यह घोषणा पूरी करने के लिए ही की गई है। किसी भी घोषणा की कसौटी यही है कि उसे पूरा किया जाय। ऐसा करने से मौजूदा काम सुधरेंगे और भविष्य के लिए उनका निर्माण होगा। यूरोप में जो युद्ध शुरू हुआ है उससे भीषणता बढ़ने की बहुत सम्भावना है, पर इधर कई बरसों में एबिसीनिया, स्पेन और चीन में जो युद्ध हुए हैं उनमें भी बहुत से आदमी मारे गये हैं, हवाई जहाज़ों के ज़रिये खुले नगरों पर बम-वर्षा में मनुष्यों का खूब संहार हुआ है, भीषणता और हिंसा बराबर बढ़ रही है, और संसार उसकी छाया में बड़ा कष्ट पा रहा है। अगर यह भीषणता न रोकी गई तो भूतकाल की मूल्यवान सभी चीज़ें नष्ट हो जायँगी। उस भीषणता को यूरोप और चीन में रोकना है, पर उसका तबतक अन्त न होगा, जबतक कि फासिस्टवाद और साम्राज्यवाद का निर्मूलन न किया जायगा।

"इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए कार्यसमिति सहयोग देने के लिए तैयार है, पर अगर यह युद्ध भी साम्राज्यवाद की भावना से लड़ा गया तो यह एक बड़ा भयानक दुःखद काण्ड होगा। कार्यसमिति यह ऐलान करना चाहती है कि हिन्दुस्तान की

जनता की जर्मन प्रजा या जापानी प्रजा से कोई लड़ाई नहीं है, या दूसरे किसी भी देश की प्रजा से कोई लड़ाई नहीं, पर भारतीय जनता की उस शासन-पद्धति से गहरी लड़ाई है जो आजादी नहीं देती और जिसका आधार हिंसा और आक्रमण करना है। हिन्दुस्तान यह नहीं चाहता कि किसी देश की विजय दूसरे देश पर हो, बल्कि सच्चे लोकतन्त्रवाद की विजय हो, जो सब देश की जनता की विजय हो और फिर संसार हिंसा तथा साम्राज्यवादी दमन से मुक्त हो जाय।

''कांग्रेस कार्यसमिति भारत की जनता से अपील करती है कि इस संकट-काल में वह भीतरी झगड़े दूर कर दे और निर्दिष्ट उद्देश्य के लिए संसार की महान् व्यापक स्वतन्त्रता में भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए तत्पर रहे।''

१४ सितम्बर, १९३९.

: ४ :

अब ब्रिटेन बतलाए

[१५ सितम्बर को कांग्रेस-कार्यसमिति द्वारा दिये गये युद्ध-सम्बन्धी वक्तव्य पर वर्धा से महात्मा गाँधी ने नीचे लिखा वक्तव्य निकाला—सं०]

''विश्व में पैदा होनेवाली संकटापन्न परिस्थिति के बारे में काँग्रेस-कार्यसमिति ने चार दिनतक विचार किया और तब उसके वक्तव्य की आखिरी रूप-रेखा निर्धारित हुई। कार्यसमिति की ओर से निमंत्रित किये जाने पर उस वक्तव्य के मसविदे को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने तैयार किया और उसपर समिति के सभी सदस्यों ने खुले तौर से अपने-अपने विचार ज़ाहिर किये। मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि वहाँ पर केवल मैं ही एक अकेला व्यक्ति था, जिसका यह विचार था कि ब्रिटेन को चाहे जिस प्रकार की भी सहायता दी जाय, पर वह बिना किसी शर्त के दी जानी चाहिए। अगर ऐसा किया जाता तो उसका आधार केवल शुद्ध अहिंसात्मक आधार होता। लेकिन कार्यसमिति के ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी थी, जिसको उसे पालन करना था। कार्यसमिति शुद्ध अहिंसात्मक दृष्टिकोण अख्तियार न कर सकी। उसने यह महसूस किया कि देश में अहिंसा की भावना उतनी मौजूद नहीं है कि जिससे उसमें इतनी ताक़त आ जाये कि वह अपने विरोधी की कठिनाइयों से लाभ उठाने से अपनेको रोक रक्खे। लेकिन कार्यसमिति ने अपने निर्णय के कारण बताते समय ब्रिटेन के प्रति अधिक-से-अधिक सहानुभूति दिखाने की इच्छा ज़ाहिर की है।

''उस वक्तव्य के मसविदे को तैयार करनेवाला एक कलाकार है। हालांकि वह साम्राज्यवाद के प्रत्येक स्वरूप का बड़े-से-बड़ा विरोधी है, किन्तु फिर भी वह अंग्रेज़ों का मित्र है। सचमुच वह अपने विचारों और दृष्टिकोणों से एक भारतीय से अधिक एक अंग्रेज़ है। उसे अपने देशवासियों की अपेक्षा अंग्रेज़ों के साथ होने में अधिक

सहूलियत महसूस होती ह । वह इस अर्थ में मानवतावादी है कि उसम हरेक बुराई को देखकर, चाहे वह कहीं भी क्यों न होती हो, प्रतिक्रिया होती है। इसलिए वह कट्टर राष्ट्रीयतावादी है । किन्तु उसकी राष्ट्रीयता की भावना अन्तर्राष्ट्रीयता से भरपूर है। इसलिए उसका वक्तव्य एक वह घोषणा-पत्र है, जो केवल अपने देशवासियों या ब्रिटिश सरकार और ब्रिटेन की जनता को ही सम्बोधित करते हुए नहीं, बल्कि दुनिया के उन सभी देशों को भी सम्बोधित करके लिखा गया है जो हिन्दुस्तान की ही तरह शोषित हो रहे हैं । उसने कार्यसमिति के ज़रिये हिन्दुस्तान को न केवल अपनी आज़ादी के सवाल पर, बल्कि दुनिया के दूसरे शोषित देशों को भी आज़ादी के सवाल पर विचार करने के लिए बाध्य किया है ।

"कार्यसमिति ने अपना वक्तव्य देने के साथ ही एक बोर्ड की स्थापना की, जिसके अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल ही हैं, जो अपनी इच्छा के अनुसार उसके सदस्य चुनेंगे और वह बोर्ड समय-समय पर आगे पैदा होनेवाली परिस्थितियों पर विचार करेगा। मुझे आशा है कि सभी काँग्रेसवादियों के बीच उस वक्तव्य को एकमत से समर्थन प्राप्त होगा । काँग्रेसवादियों में उग्र-से-उग्र लोगों को भी उसमें कोई कमी नहीं मिलेगी । देश के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अवसर पर काँग्रेसियों को यह विश्वास करना चाहिए कि अगर कार्रवाई करने की ज़रूरत पड़ी तो काँग्रेस की कार्य-शक्ति में किसी प्रकार की भी कमी नहीं आने पायेगी । अगर काँग्रेसवादी अपने को मामूली-मामूली बातों या झगड़ों में लगाये रक्खेंगे तो वह एक दुःख की बात होगी । अगर कोई बड़ा या महत्त्वपूर्ण कार्य करना है, तो हरेक काँग्रेसवादी में अविभाज्य और बिना शर्त के वफ़ादारी होनी बहुत ज़रूरी है । मुझे यह भी उम्मीद है कि दूसरे राजनैतिक दल और सभी काँग्रेस-कार्यसमिति की इस माँग को, जिसके ज़रिये उसने ब्रिटिश सरकार से अपनी नीति को स्पष्ट कर देने के लिए कहा है, समर्थन करेंगे और यथा-सम्भव उसीकी नीति के अनुसार कार्य करेंगे ।

"मेरे विचार से यह ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिपादित लोकतंत्र-सम्बन्धी सिद्धान्त का स्वाभाविक परिणाम निकलता है कि हिन्दुस्तान का और ब्रिटेन द्वारा शासित दूसरे सभी देशों का स्वतन्त्रता और स्वाधीनता को दर्जा स्वीकार कर लिया जाये । अगर युद्ध में इतना भी नहीं होता तो शासित देशों के द्वारा तबतक ईमानदारी से और स्वेच्छा-पूर्वक कभी भी सहयोग प्राप्त नहीं किया जा सकता, जबतक कि वह अहिंसा के सिद्धांत पर आधार नहीं रखता । इस सम्बन्ध में जिस बात की ज़रूरत है वह सिर्फ़ यही कि ब्रिटिश राजनैतिक अधिकारियों में मानसिक क्रान्ति होनी चाहिए, या और भी स्पष्ट शब्दों में इस समय जो सबसे बड़ी ज़रूरत है वह यह कि युद्ध के मौक़े पर जनसत्ता के प्रति जो घोषणा की गई है, और जो अब भी ब्रिटिश प्लेटफार्म से दोहराई जा रही है, उसे ईमानदारी के साथ अमल में लाया जाये ।

"अब सवाल यह है कि क्या ब्रिटेन हिन्दुस्तान की अनिच्छा होने पर भी उसे युद्ध में घसीटेगा, या वह सच्ची जनसत्ता की रक्षा के लिए हिन्दुस्तान से इच्छुक मित्र-

राष्ट्र के रूप में सहायता प्राप्त करना चाहेगा ? कांग्रेस का समर्थन ब्रिटेन और फ्रांस के लिए नैतिक दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण होगा। क्योंकि कांग्रेस के पास सैनिक तो हैं नहीं, जिन्हें वह दे सके। कांग्रेस तो हिंसात्मक तरीक़े से नहीं, बल्कि अहिंसात्मक तरीक़े से लड़ती है, भले ही उसकी वह अहिंसा कितनी ही अपूर्ण या अपरिमार्जित क्यों न हो।"

'हरिजन-सेवक', २३ सितम्बर, १९३९.

: ५ :

हिन्दुस्तान और वर्तमान युद्ध

[वर्तमान यूरोपीय युद्ध, ब्रिटिश सरकार की नीति और भारत की स्थिति का सिंहावलोकन करते हुए पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस-कार्यसमिति के वक्तव्य के बाद निम्नलिखित लेख प्रकाशित किया—सं०]

"घटना-चक्र तेजी से चल रहा है। अदम्य प्रेरणा उसे आगे बढ़ाती है और एक घटना दूसरी से आगे बढ़ जाती है। भौतिक शक्तियाँ दुनिया को इधर-उधर दौड़ा रही हैं और उन आयोजनाओं को घृणा की दृष्टि से देख रही हैं जिन्हें अधिकार-प्राप्त लोग चलाना चाहते हैं। आदमी और औरतें भाग्य के हाथ के खिलौने हो रहे हैं और लड़ाई के उबलते भँवर में खिचे आ रहे हैं। हम सब किधर जायँगे, और इस संघर्ष का जिसमें कि राष्ट्र अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए बेतहाशा लड़ रहे हैं, क्या होगा, यह कोई नहीं कह सकता। फिर भी हम दुनिया के अपने अध्ययन से कह सकते हैं कि दुनिया हमारी आँखों के सामने नष्ट हुई जा रही है। आगे क्या होगा, यह कोई नहीं जानता।

"दुनिया के इस महत्वपूर्ण दुखान्त नाटक में हिन्दुस्तान क्या भाग लेगा ? कांग्रेस की कार्यसमिति ने प्रभावशाली और गौरवपूर्ण शब्दों में वह मार्ग बता दिया है, जिस पर हमें चलना है। हालांकि अन्तिम निश्चय अभीतक नहीं हुआ है, फिर भी निश्चय करने वाले बुनियादी सिद्धांत बता दिये गए हैं। बुनियादी फैसला तो पहिले ही होगया है और मौजूदा हालतों के अनुसार उसे कैसे अमल में लाया जाय, यही बात अभी तय करने के लिए है। उसका अमल में लाना अब तो इस बात पर निर्भर है कि कहाँतक उन बुनियादी सिद्धान्तों को ब्रिटिश सरकार स्वीकार करती है और अमल में लाती है। संक्षेप में, हिन्दुस्तान अब कभी भी इस बात पर राजी नहीं हो सकता कि वह साम्राज्य का एक भाग रहे, न वह यह चाहेगा कि उसे ग़ुलाम राष्ट्र माना जाय जो दूसरों के हुक्म पर नाचता फिरे। चाहे शांति हो या युद्ध, हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र राष्ट्र की हैसियत से काम करने का हक़ होना चाहिए।

"हाल ही के इतिहास में कोई भी चीज़ इतने अचरज की नहीं है जितना कि लड़ाई के पहले ब्रिटिश-सरकार का पूरी तरह से दिवालियापन है। यह सचाई के

साथ कहा जा सकता है कि अपनी ही नीति से उसने अपनी सारी मुसीबतें अपने और दुनिया के ऊपर बुलाई हैं। मंचूरिया, एबिसीनिया, चेकोस्लोवाकिया, स्पेन और पिछले साल सोवियट रूस के साथ किया गया अपमानजनक व्यवहार, इन सबके कारण धीरे-धीरे विश्वसंकट पास-से-पास आगया है और अब हम सबको उस संकट में डूबना पड़ा है। इंग्लैण्ड बहादुरी और दृढ़ता के साथ संकट का मुकाबिला कर रहा है; लेकिन उसे अपनी पुरानी नीति के भारी बोझ को भी तो उठाना है और उसी नीति को ध्यान में रखकर उसने प्रजातन्त्र और आजादी के बारे में जो घोषणा की है उसका कोई मूल्य नहीं है। अब भी उस बोझ को उतार फेंकने का और साम्राज्यवादी परम्परा को छोड़ने का उसे मौका दिया गया है। इस तरह सब राष्ट्र एक हैसियत से सबकी आजादी के ध्येय की तरफ बिना रुकावट के बढ़ें, इसके अलावा दूसरा रास्ता नहीं है। क्या ब्रिटिश-सरकार इतनी बुद्धिमान और महान् है कि राज़ी से इस रास्ते पर श्रद्धापूर्वक चलेगी ?

''अबतक तो उसने बुद्धिमानी का बहुत ही अभाव दिखाया है और हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में कुछ ऐसी कार्रवाइयां भी की हैं जो भारतीयों की इच्छा के एकदम प्रतिकूल हैं। क्या वह सोचती है कि वह जनता जिसमें स्वाभिमान है और जिसे अपनी शक्ति का ज्ञान है, ऐसे व्यवहार को स्वीकार कर सकती है ? हिन्दुस्तान अब विदेशी सत्ता के हुक्म पर चलने के लिए न खींचा जा सकता है, न बाध्य किया जा सकता है। समय आगया है कि साम्राज्य की भावना का अन्त कर दिया जाय और स्वतंत्र राष्ट्रों की मित्रता और सहयोग प्राप्त किया जाय। बराबरी की हैसियत की शर्त पर हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र देश माना जाना चाहिए और वैसा ही उसके साथ व्यवहार होना चाहिए। ऐसा न किया गया तो उससे संघर्ष होगा और वह सब राष्ट्रों के लिए बदक़िस्मती का बायस होगा।

''दूसरे आदमियों की तरह, हमारे अपने आदमियों के लिए भी यह भारी परीक्षा का समय है। अगर हम इस परीक्षा में असफल हुए तो पीछे रह जायँगे और दूसरे आग बढ़ जायँगे। हम इस दल या उस दल, यह या वह जमात या मजहबी दल, उग्र या नरम पक्ष की परिभाषा में नहीं सोच सकते। सोचना भी नहीं चाहिए। हिन्दुस्तान और दुनिया की आजादी के महान लक्ष्य के लिए राष्ट्रीय संगठन की इस समय जरूरत है। अगर हम अपने मामूली कलहों को जारी रक्खें, अपने मतभेदों पर जोर दें, एक-दूसरे में बुरे हेतुओं की आशंका करें, और किसी दल या पार्टी के लिए फायदा उठाने की कोशिश करें, तो उससे हमारा ही छोटापन जाहिर होता है, जबकि बड़े मसले खतरे में हैं। उससे तो हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियों को हानि ही पहुँचाई जाती है।

''कांग्रेस की कार्यसमिति ने हमें मार्ग बताया है। भारत ने आवाज उठाई है, और उसकी पुकार ने हमारे हृदयों में प्रतिध्वनि पैदा की है। हम सबको उसीपर चलना चाहिए और इस संकट के समय में आवाजकशी नहीं करनी चाहिए। हरेक कांग्रेसजन

को चाहिए कि सोच-समझकर कुछ कहे या करे, ताकि वह कुछ ऐसा न कहे या करे जिससे राष्ट्र के इरादे में कोई कमजोरी आवे या उससे कांग्रेस की शान कम हो। हम सब एक हैं, एकसाथ बोलते हैं और हिन्दुस्तान के लिए, जिसके प्रेम से अवतक हमने प्रेरणा पाई है और जिसकी सेवा हमारा परम सौभाग्य रहा है, हम एकसाथ काम करेंगे । भविष्य हमें इशारा कर रहा है । आइए, आजादी के ध्येय की ओर हम सब एक साथ बढ़ें !"

२१ सितम्बर, १९३९.

: ६ :

नया अध्याय खोलिए

[२८ सितम्बर १९३९ को भारत मंत्री, लार्ड जेटलैण्ड ने लार्ड-सभा में भाषण दिया था जिसमें अन्य बातों के साथ कांग्रेस की युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यों को स्पष्ट करने की ब्रिटिश-सरकार से की गई माँग को उन्होंने 'असामयिक' बताया और कहा कि कांग्रेस प्रातिनिधिक संस्था नहीं है । लार्ड जेटलैण्ड के इसी भाषण पर महात्मा गान्धी ने वर्धा से निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया––सं०]

"लार्ड-सभा में भारतीय मामलों पर जो बहस हुई है उनकी 'रायटर' द्वारा तैयार की गई संक्षिप्त रिपोर्ट की पहिले से भेजी गई प्रति मुझे दिखलाई गई है। शायद इस समय मेरे चुप रहने से भारत और इंगलैण्ड दोनों की कुसेवा होगी। मैं इस बात के लिए तैयार नहीं था कि लार्ड-सभा की बहस में भारत के प्रति अप्रिय तुलनायें की जायँगी और बहस को इस प्रकार से चलाया जायगा । मेरा दावा है कि कांग्रेस पूर्ण प्रातिनिधिक संस्था है । किसीके विरुद्ध बिना कुछ कहे हुए कांग्रेस के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यह वह संस्था है कि जिसने आधी सदी से अधिक समय से बगैर किसी प्रतिद्वंदी संस्था के मुकाबिले के भारतीय जनता की समस्त श्रेणियों और सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व किया है । कांग्रेस का एक भी ऐसा कोई स्वार्थ नहीं है, जो मुसलमानों या देशी रियासतों की प्रजाओं के हित के विरुद्ध हो । पिछले कुछ बरसों ने यह पूरे तौर से सिद्ध कर दिया है कि कांग्रेस निश्चयात्मक रूप से देशी राज्यों की प्रजाओं के हितों का प्रतिनिधित्व करती है । यह वह संस्था है जिसने यह कहा है कि ब्रिटेन के क्या इरादे है, यह स्पष्ट रूप से बतला दिया जाये । अगर अंग्रेज लोग सभी देशों की स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे हैं, तो उनके प्रतिनिधियों को जितना अधिक सम्भव हो उतना स्पष्ट शब्दों में यह कहना होगा कि जिस उद्देश्य के लिए लड़ाई लड़ी जा रही है, उसमें भारत की स्वतन्त्रता भी आवश्यक रूप से शामिल है । ऐसी स्वतन्त्रता में क्या रहेगा, इसका निर्णय भारतीय लोग ही बस कर सकते हैं । निस्सन्देह लार्ड जेटलैण्ड के लिए यह शिकायत करना अनुचित है, हालांकि उन्होंने बहुत शिष्ट शब्दों में शिकायत की है कि कांग्रेस ने ब्रिटिश इरादों की स्पष्ट

घोषणा करने की बात ऐसे समय पर उठाई है जिस समय कि ब्रिटेन जिन्दगी और मौत की लड़ाई में लगा हुआ है। मेरा यह कहना है कि कांग्रेस ने इस तरह की घोषणा करने की बात कहकर कोई आश्चर्यजनक या सम्मानरहित बात नहीं की है। केवल स्वतन्त्र भारत की ही सहायता मूल्यवान होगी और कांग्रेस को यह जानने का पूरा हक़ है कि वह जनता के पास जाये और उससे कहे कि लड़ाई के खत्म होने पर भारत का पद उसी स्वतन्त्र देश का-सा होना निश्चित है जिस तरह का कि ग्रेट-ब्रिटेन का पद है। इसलिए अंग्रेज लोगों के मित्र की हैसियत से मैं अंग्रेज राजनीतिज्ञों से अपील करता हूँ कि वे पुराने साम्राज्यवादियों की भाषा भूल जायँगे और सब लोगों के लिए, जो साम्राज्य के बन्धन में रहते आये हैं, एक नया अध्याय आरम्भ करेंगे।"

'हरिजन-सेवक', ७ अक्तूबर, १९३९.

: ७ :

पंडित जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य

[काँग्रेस युद्ध-उपसमिति के प्रधान पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लार्ड ज़ेटलैण्ड के वक्तव्य पर इलाहाबाद से निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया—सं०]

"लार्ड-सभा में लार्ड ज़ेटलैण्ड ने जो बयान दिया, उसकी रिपोर्ट मैंने बड़े दु:ख के साथ पढ़ी। मैं इस मामले में उनके साथ किसी बहस में नहीं पड़ना चाहता। कांग्रेस-कार्यसमिति ने कांग्रेस की स्थिति साफ जाहिर करदी है। लेकिन लार्ड ज़ेटलैण्ड ने इस मामले में कांग्रेस-कार्यसमिति के उदाहरण का अनुकरण नहीं किया।

"हम लोगों ने युद्ध व शान्ति के विस्तृत उद्देश्यों को अपने सामने रखते हुए भारत की समस्या पर गौर करने की कोशिश की और बाद में ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की कि वह साफ ऐलान करे कि इस लड़ाई में उसके उद्देश्य क्या हैं और जहाँ-तक वर्तमान काल में सम्भव हो, वह उन्हें अमल में भी लावे।

"कार्यसमिति और कांग्रेस नेताओं ने यह साफ कर दिया था कि हम कोई सौदा नहीं करना चाहते और न ब्रिटेन की मुसीबत से फ़ायदा ही उठाना चाहते हैं। लेकिन हमारी राय में भारत और विश्व की दृष्टि से यह लाजमी है कि युद्ध के उद्देश्यों की खुलासा व्याख्या करदी जाय और लोगों को उनकी असलियत पर यकीन दिला दिया जाय। ताज्जुब है कि ऐसी प्रार्थनाओं को भी 'असामयिक' बताया जाता है। क्या हम तबतक इन्तज़ार करें, जबतक कि वह विनाशक युद्ध समाप्त नहीं हो जाता, जिसके उद्देश्य जाने बिना ही हमें कहा जा रहा है कि हम उसमें हिस्सा लें। क्या हज़ारों आदमी बिना यह जाने ही अपनी जानें लड़ा दें कि उनके जान देने का निश्चित कारण क्या है?

"पिछले ज़माने में जितने भी युद्ध लड़े गये, उनमें पहले ही यह ऐलान कर

दिया जाता रहा कि अमुक लड़ाई अन्याय, आक्रमण और बल-प्रयोग के खिलाफ़ न्याय, प्रतिष्ठा और सचाई को स्थापित रखने के लिए लड़ी जा रही है। लेकिन जब लड़ाई खत्म हुई तो कोई परिवर्तन न हुआ और पहले के ऐलान तक को भुला दिया गया। सरकारों ने बीती घटनाओं से शिक्षा नहीं ली; इसका ज्वलंत उदाहरण गत यूरोपीय महायुद्ध था। क्या मानवता को इस द्वेष और हिंसात्मक रास्ते पर रौंदा जाया करेगा और क्या हम हिंसा और आक्रमण के शिकार बने रहेंगे? अगर ऐसा ही है, तो गत यूरोपीय महायुद्ध की तरह वर्तमान युद्ध में भी दिये गए बलिदान बेकार साबित होंगे।

''यह सवाल केवल भारत से ही नहीं; बल्कि समूचे संसार और उन लोगों से सम्बन्ध रखता है जो मानवीयता के भविष्य में आशा रखते हैं और जो चाहते हैं कि युद्ध के तमाम कारणों व मानवीय शोषण से यह संसार मुक्त हो जाय। अतएव कांग्रेस-कार्यसमिति ने न केवल भारत, अपितु प्राणीमात्र की तरफ से ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की थी कि वह इस स्थिति को साफ़ करदे और इस तरह मनुष्य-जाति के निराशापूर्ण हृदयों में आशा का संचार करदे। क्योंकि हमारा सम्बन्ध सीधा भारत से था, इसीलिए हम यह जानना चाहते थे कि वर्तमान और भविष्य में उन उद्देश्यों को भारत में कैसे कार्यान्वित किया जायगा। इतना ही नहीं, हम यह भी जानना चाहते थे कि यूरोप के देशों, चीन और अन्यान्य उपनिवेशों के सम्बन्ध में भी यह उद्देश्य कहाँतक लागू होंगे, क्योंकि समूचे संसार में ही साम्राज्यवाद का बोलबाला है।

''हमने फासिज्म और उसकी कारगुजारियों की पूरे जोर के साथ निन्दा की है, लेकिन यदि फ़ासिज्म की निन्दा करनेवाला साम्राज्यवाद का गुणगान करे, तो वह एकदम वाहियात बात होगी।

''लार्ड ज़ेटलैण्ड कहते हैं कि यदि कांग्रेस ने भारत के अनेक प्रान्तों का शासन-प्रबन्ध छोड़ दिया तो यह जबर्दस्त बदकिस्मती होगी। मैं सहमत हूँ। मगर हमारे और दूसरे लोगों के लिए यह भी दुर्भाग्य की बात होगी, यदि कांग्रेस सरकारें उन आदर्शों को भूल जायं, जिनकी पहले ही से घोषणा की जा चुकी है, और वह सार्वजनिक समर्थन खो बैठें, जिसके कारण उनकी सत्ता बनी हुई है। और इस तरह इच्छा न होते हुए भी उस नीति के, खिलौने बन जायँ, जिसे भारतीय जनता नापसन्द करती है। यह भी एक भारी बदक़िस्मती की बात होगी अगर यह युद्ध बिना उद्देश्यों को स्पष्ट किये चलता रहा और उसका नतीजा भयानक बरबादी और आतंक ही नहीं, बल्कि उन प्रणालियों को शक्तिशाली बनाना हुआ, जिनका स्वतंत्रता और जनतन्त्र के नाम पर त्याग कर दिया गया है।

''कांग्रेस-कार्यसमिति के वक्तव्य के सम्बन्ध में कुछ भी क्यों न कहा जाय, लेकिन समिति पर यह इल्जाम नहीं लगाया जा सकता कि उसने जल्दबाजी से काम लिया। समिति ने कुछेक स्पष्ट प्रश्न तैयार किए, जिनका उत्तर मांगा गया। लार्ड ज़ेटलैण्ड उन प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं देते? विश्व की इस वर्तमान अग्नि परीक्षा

में जब कि मौजूदा सभ्यता तक खतरे में है, कोई भी जिम्मेदार व्यक्ति उन महत्व-पूर्ण सवालों की उपेक्षा नहीं कर सकता, फिर चाहे वह अंग्रेज़ या भारतीय कोई भी क्यों न हो। लेकिन उपेक्षा करने की कोशिश करने से ही लोगों के दिलों में शक पैदा हो जाता है। ऐसे समय में जब कि बड़े मसले खतरे में हैं, किसीको भी मामूली सौदा करने में नहीं पड़ना चाहिए।

"आज इन प्रश्नों पर २० साल पहले के रंग में नहीं सोचा जा सकता, क्योंकि संसार बदल चुका है, भारत बदल चुका है। और अगर कोई इन सचाइयों को भूल जाता है तो इससे साबित होता है कि वह असलियत को नहीं समझता। इससे न केवल भारत व इंग्लैण्ड का, बल्कि समूचे संसार का नाश हो जायगा।

"यद्यपि संसार बदल चुका है और निकट भविष्य में और भी शीघ्रता से बदल जायगा, लेकिन लार्ड ज़ेटलैण्ड तो कल के, जो बीत चुका है, रंग में बोल रहे हैं। वह अपना यह भाषण आज से २० वर्ष पहले दे सकते थे, अब तो बहुत देर हो गई। अब हमारे लिए, चाहे हम इंग्लैण्डवासी हैं या हिन्दुस्तानी, परिवर्तन के तूफ़ान को रोकना नामुमकिन है। अगर हम अकलमन्द हैं तो हम उस पर काबू पाकर उसकी दिशा अवश्य बदल सकते हैं।

"मैं यह फिर जोरों के साथ दोहरा देना चाहता हूँ कि हमने सौदा करने की भावना से कोई मांग पेश नहीं की। जिम्मेदार भारतीय होने के नाते हमारा यह कर्तव्य है कि हम भारत की स्वाधीनता और उसकी खुशहाली पर विचार करें। कांग्रेस का भी यही आवश्यक कार्य है। और वह उसे भूल नहीं सकती। लेकिन आज तो हमने भारत की समस्या पर विशाल दृष्टि से विचार करने की कोशिश की है—विशेषकर इस गतिशील काल में; क्योंकि हमें यक़ीन हो गया है कि बिना विश्व की समस्या का खयाल किये किसी भी समस्या का हल नहीं निकाला जा सकता। अगर संसार की स्वतन्त्रता और खुशहाली के लिए आवश्यक हो तो भारत-वर्ष अपने कुछेक राष्ट्रीय लाभों का त्याग कर सकता है, क्योंकि हम यह महसूस करते हैं कि यदि किसी दूसरे को नुकसान पहुंचाकर हम कोई राष्ट्रीय लाभ उठावें तो वह स्थिर न होगा। लेकिन हमें विश्व की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में यकीन दिला दिया जाना चाहिए। उसी हालत में युद्ध हमारे लिए कुछ अर्थ रक्खेगा; हमारे दिल और दिमाग़ को छुएगा, क्योंकि उसी हालत में एक ऐसे ध्येय के लिए जो कि हमारे ही वास्ते नहीं, बल्कि तमाम दुनिया के लिए अच्छा है, हम लड़ेंगे और कष्ट उठावेंगे।

"चूँकि हम महसूस करते हैं कि भारत की तरह इंग्लैण्ड में भी कुछ लोग ऐसे हैं जो अपने सामने विश्व-सम्बन्धी आदर्श रखते हैं, इसलिए हमने उन्हीं आदर्शों की पूर्ति के लिए अपना सहयोग पेश किया है। अगर यह नहीं है, तो सवाल यह है कि हम किसके लिए लड़ें? फिर हम उस अमानवीय संघर्ष में क्यों पड़ें, जो अनेक साम्राज्यवादों में अपनी रक्षा के लिए छिड़ा हुआ है और अनिच्छा से साम्राज्य उस नीति के हाथ के

खिलौने हो रहे हैं, जिसे वे और हम नापसंद करते हैं। मेरा ख़याल है, वे एड़ी से चोटी तक का ज़ोर लगा लें, उन्हें सफलता नहीं मिलेगी। अगर इस हालत में भी अक्लमन्दी से काम न लिया गया तो बहुत देर हो जायगी और भारतवर्ष किसी भी साम्राज्यवादी संघर्ष में हिस्सा न लेगा। स्वतन्त्र और सन्तुष्ट भारत ही उन आदर्शों के लिए संघर्ष कर सकता है, जिनकी स्पष्ट घोषणा की जाय और जिन्हें कार्यान्वित किया जाय।"

२९ सितम्बर, १९३९.

: ८ :

पंडित जवाहरलाल नेहरू का सन्देश

[पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लन्दन के 'न्यूज़ क्रानिकल' पत्र के लिए निम्न-लिखित सन्देश दिया—सं०]

"हिंसा और अमानुषिक युद्ध ने यूरोप को अपने कब्जे में कर रक्खा है और सम्पूर्ण संसार की सभ्यता खतरे में है। शस्त्रास्त्रों के संघर्ष के पीछे सिद्धान्तों और उद्देश्यों का संघर्ष छिपा हुआ है और दुनिया का भविष्य अनिश्चित प्रतीत हो रहा है ? आज इतिहास का निर्माण न केवल युद्ध-क्षेत्र में हो रहा है, वरन् मनुष्यों के दिमाग में भी हो रहा है और हमारे सामने प्रमुख प्रश्न यह है कि क्या यह इतिहास प्राचीन काल के इतिहास से भिन्न होगा और क्या यह भयानक युद्ध उन परिवर्तनों को लाने में समर्थ होगा जो कि युद्ध के कारणों और मानव के पतन को ही सदा के लिए मिटा देंगे ? भारत के लिए, जोकि आज़ादी से प्रेम और युद्ध और हिंसा से घृणा करता है, यह प्रश्न बड़े महत्त्व का है। उसने फ़ासिज्म के सिद्धान्तों और तरीक़ों की निंदा की है और नाज़ी आक्रमण तथा बर्बरता में अपने प्रिय सिद्धान्तों का हनन देखा है। उसके लिए शान्ति का अर्थ ह आज़ादी और प्रजातन्त्र। और वह एक राष्ट्र पर दूसरे राष्ट्र के प्रभुत्व का अन्त चाहता है। अतएव भारत ने मंचूरिया, एबिसीनिया और चेकोस्लोवाकिया की आज़ादी पर किये गए आक्रमणों का विरोध किया और उसे स्पेन की भयानक घटनाओं तथा पोलैण्ड पर किये गए नाज़ी आक्रमण से बेहद दुःख हुआ है। इसलिए शान्ति आज़ादी की किसी भी नई प्रणाली की स्थापना के लिए भारत सहर्ष अपने सम्पूर्ण साधनों से सहायता करेगा।

"यदि युद्ध का उद्देश्य इसी प्रकार की शान्ति है तो युद्ध और शान्ति के उद्देश्यों की स्पष्ट घोषणा होनी चाहिए और उन्हींके अनुसार कार्य होना चाहिए। ऐसा करने में आनाकानी का अर्थ यह होगा कि उद्देश्य स्पष्ट नहीं हैं और जो कुछ स्पष्टरूप से कहा जा रहा है उसमें कोई गम्भीरता नहीं है। हम इससे उन व्यक्तियों की आशंकाओं को दूर करना चाहते हैं जिनको इस बात का कटु अनुभव है कि युद्ध आदर्शों का अन्त करनेवाले होते है और आखिर में उनका अन्त साम्राज्यवाद के हितों में होता है। यदि यह युद्ध

प्रजातन्त्र और आत्म-निर्णय के लिए तथा नाज़ी आक्रमण के विरुद्ध लड़ा जा रहा है तो निश्चय ही उसका अन्त भूमि पर क़ब्ज़ा किये जाने, हर्जाना वसूल करने तथा उपनिवेशों की जनता पर साम्राज्यवादी प्रणाली का दबाव डालने में नहीं होना चाहिए।

"इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों को स्पष्ट करने का निमंत्रण दिया है, विशेषतया उन उद्देश्यों को स्पष्ट करने का जिनका कि भारत और उसमें प्रचलित साम्राज्यवादी प्रणाली से निकट सम्बन्ध है। भारत साम्राज्यवाद की रक्षा के लिए किसी भी युद्ध में शामिल नहीं हो सकता, लेकिन आज़ादी की लड़ाई में वह ज़रूर शामिल होगा। यद्यपि भारत के साधन अपरिमित हैं, परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण उसकी शुभकामना तथा नैतिक सहयोग है। यह भारत की ओर से कोई छोटी बात नहीं है; क्योंकि इस प्रकार वह भारत और ब्रिटेन के बीच चलने वाले एक शताब्दी के संघर्ष को बन्द कर रहा है। केवल एक स्वतंत्र तथा समानाधिकार रखने वाला भारत अपनी स्वेच्छा से सहयोग दे सकता है। जबतक कि यह परिवर्तन नहीं हो जाता, यह युद्ध हमारा युद्ध नहीं है। एक लोकप्रिय युद्ध के लिए सार्वजनिक सहयोग होना चाहिए और जनता को उससे होनेवाले लाभ का विश्वास होना चाहिए। हमारे ऊपर लादा गया युद्ध केवल विरोध तथा विपरीत भावनायें पैदा करेगा।

"इस अवसर पर हमें भारत की आज़ादी के पहले सब युद्धों को अपने सामने रखना है। हमारा वर्तमान विधान भी हमारी इच्छा के विरुद्ध हमारे ऊपर लादा गया है और उसने हमारे विरोध को बराबर जाग्रत रक्खा है। यह विरोध अधूरे अस्पष्ट वायदों से शान्त नहीं हो सकता। इस ऐतिहासिक अवसर का उपयोग भारत की आज़ादी तथा उसके स्वयं अपना विधान तैयार करने के अधिकार को स्वीकृत करके होना चाहिए। इससे कुछ भी कम का अर्थ इस अवसर को खो देना होगा। भारत में संघर्ष बना रहेगा। इसलिए पहला क़दम भारत की आज़ादी की घोषणा की दिशा में उठना चाहिए। इसके बाद जहांतक सम्भव हो सके भारत के शासन तथा युद्ध में सहयोग का उत्तरदायित्व भारत पर ही छोड़ देने की चेष्टा होनी चाहिए। उसी दिशा में जनता की सहानुभूति प्राप्त करनें के उपयुक्त वातावरण उत्पन्न हो सकता है। अभी भी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो रही हैं, सार्वजनिक कार्यकर्ता गिरफ्तार किये जा रहे हैं और सार्वजनिक तथा मज़दूरों की कार्रवाइयों पर रोक लगाई जा रही हैं। यह वही पुराना तरीक़ा है जो कि गुज़रे दिनों में असफल साबित हुआ है और जिसकी भावी असफलता भी निःसन्देह है।"

७ अक्तूबर, १९३९.

: ६ :

कांग्रेस-महासमिति का युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव

[वायसराय से कांग्रेस सभापति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, युद्ध-उपसमिति के अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा कांग्रेस-पार्लमेण्टरी-उपसमिति के अध्यक्ष सरदार पटेल और महात्मा गांधी की मुलाक़ातों के बाद कांग्रेस-महासमिति ने वर्धा में हुई अपनी बैठक में युद्ध-सम्बन्धी निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया--सं०]

"यूरोप की युद्ध-घोषणा ने संसार और हिन्दुस्तान के लिए अत्यन्त गम्भीर अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पैदा कर दी है। विश्व-संकट से इस समय हिन्दुस्तान की जनता के पथ-प्रदर्शन की भारी ज़िम्मेदारी रहने के कारण, कांग्रेस-महासमिति ने इस गंभीर स्थिति पर विचार करते हुए, कांग्रेस की पूर्व घोषणाओं और सिद्धान्तों के आधार पर अपने मार्ग का निर्णय किया है। कांग्रेस का ध्येय है हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की प्राप्ति, और जनतन्त्र शासन-प्रणाली की स्थापना, जिसमें समस्त अल्प-संख्यक संप्रदायों के अधिकार तथा स्वार्थ अक्षुण्य और सुरक्षित हों। अपने इस ध्येय को सामने रखकर कांग्रेस ने अपने संघर्षों में जिन साधनों को अपनाया है, वे शान्ति-पूर्ण और वैध रहे हैं, और कांग्रेस ने युद्ध और हिंसा को त्रास और सभ्यता तथा प्रगति के विरुद्ध समझा है। कांग्रेस ने समस्त साम्राज्यवादी युद्धों और एक देश के दूसरे देश पर प्रभुत्व कायम करने के विरुद्ध खासतौर से घोषणा की है। युद्ध के सम्बन्ध में कांग्रेस के बार-बार घोषणा करने के बावजूद भी ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान को, हिन्दुस्तानियों की सलाह के बिना ही, 'युद्ध में शामिल' देश घोषित कर दिया है, और बहुत जल्द ऐसे कानून बना दिए हैं, जिनका कि उन पर बहुत व्यापक व गहरा असर पड़ता है, और जिनसे प्रांतीय सरकारों के अधिकार काफी सीमित हो जाते हैं, और उन पर प्रतिबन्ध लग जाता है। यह होते हुए भी, कांग्रेस-महासमिति जल्दबाजी में और ब्रिटिश सरकार को अपने युद्ध और शान्तिकाल के उद्देश्यों को स्पष्ट करने का—जिनमें हिन्दुस्तान का खासतौर से उल्लेख हो—पूरा अवसर दिये बिना कोई निर्णय नहीं करना चाहती।

"युद्ध के सम्बन्ध में कांग्रेस-कार्यसमिति ने जो वक्तव्य १४ सितम्बर, १९३९ को जारी किया है कांग्रेस-महासमिति उसे मंजूर करती है। और उसमें ब्रिटिश सरकार को युद्ध और शांति के उद्देश्यों को स्पष्ट करने के लिए जो निमन्त्रण दिया गया है उसे यह समिति फिर से दोहराती है। फासिस्टवाद और नाजियों के हमले की निन्दा करते हुए समिति का यह विश्वास है कि शांति और स्वतन्त्रता तभी कायम की जा सकती है, और तभी उसे सुरक्षित रक्खा जा सकता है, जबकि सभी साम्राज्यान्तर्गत देशों को स्वाधीनता दे दी जाय, और साम्राज्यवादी नियंत्रण हटाकर उनके सम्बन्ध में स्वभाग्य-निर्णय के सिद्धान्त से काम किया जाय। खासकर, हिन्दुस्तान को एक स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर देना चाहिए। और इसपर अभी ही, जहां तक हो सके,

ज्यादा-से-ज्यादा विस्तृत रूप में अमल शुरू कर दिया जाय।

"कांग्रेस-महासमिति उत्सुकता के साथ विश्वास करती है कि ब्रिटिश सरकार अपने युद्ध और शान्ति सम्बन्धी उद्देश्यों के बारे में जो कोई वक्तव्य प्रकाशित करेगी, उसमें यह घोषणा कर देगी।

"समिति नए सिरे से यह ऐलान कर देना चाहती है कि हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता, जनतन्त्र-प्रणाली, एकता और सब अल्पसंख्यक संप्रदायों के अधिकारों की स्वीकृति तथा संरक्षण के आधार पर होनी चाहिए, जिसके लिए कि कांग्रेस हमेशा से ही वचनबद्ध है।

"कांग्रेस कार्यसमिति ने जो युद्ध-उपसमिति बनाई है यह समिति उसे मंजूर करती है, और कार्यसमिति को अधिकार देती है कि वह इस प्रस्ताव को और अपने युद्ध-सम्बन्धी वक्तव्य को अमल में लाने के लिए आवश्यक उपायों से काम ले।"

१४ अक्तूबर, १९३९.

: १० :

अनुशासन बनाये रहें

[गत १४ अक्तूबर के कांग्रेस-महासमिति के युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव पर महात्मा गांधी ने नीचे लिखा वक्तव्य दिया—सं०]

"मेरा ख़याल है कि यूरोप की स्थिति से सम्बन्ध रखनेवाला कांग्रेस-महासमिति का प्रस्ताव बुद्धिमत्ता तथा नम्रतापूर्ण है। प्रस्ताव के लिए यह जरूरी था कि वह स्पष्ट घोषणा-सम्बन्धी कांग्रेस की माँग को दोहराये। प्रस्ताव की अच्छाई इसमें है कि उसने घोषणा के लिए समय की कोई क़ैद नहीं लगाई है। यह मार्के की बात है कि प्रस्ताव के समर्थकों और विरोधियों में तीन तथा एक का अनुपात था। इस बात की आशा है कि परिस्थिति के हल के लिए जिस मित्रतापूर्ण तरीक़े से कांग्रेस काम कर रही है उसे ब्रिटिश सरकार उचित महत्व देगी। इस बात की भी आशा है कि हिन्दुस्तान में रहनेवाले यूरोपियन भी कांग्रेस का समर्थन करेंगे। किन्तु सबसे अधिक सहायता स्वयं कांग्रेसवालों से ही मिल सकती है। अगर उन सबने मिलकर एकसाथ काम न किया, तो बाहरी सहानुभूति या मदद भी काम न देगी।

"मुझे ऐसा मालूम होता है कि कुछ कांग्रेसी युद्ध-विरोधी अपना रुख प्रदर्शित करने के लिए आतुर हो उठे हैं। उनका विश्वास है कि लड़ाई साम्राज्यवाद की रक्षा के लिए लड़ी जा रही है। ऐसे व्यक्तियों को मेरी यह सूचना है कि कांग्रेस के निश्चय का विरोध करके वे एक आम उद्देश्य को पूरा न होने देंगे। कांग्रेस समिति ने जिस तरह से अपना रुख ज़ाहिर किया है, वही रुख ज़ाहिर करने का उसका एकमात्र रास्ता था। ऐसे व्यक्तियों को कांग्रेस-महासमिति में अपने विचार प्रकट करने का मौका था। अब कांग्रेसजनों का यह फ़र्ज़ है कि वे कोई प्रत्यक्ष कारंवाई उस समय

तक न करें, जबतक कि कांग्रेस-महासमिति या कार्यसमिति कोई फैसला इसके विरुद्ध न करले। जो संस्था अपने सदस्यों पर पूरी तरह से क़ाबू नहीं रख सकती, उसका विश्वास नहीं किया जा सकता। ज़रा ख़याल कीजिए कि एक सेना, जिसके सिपाही एक सामान्य उद्देश्य को आगे बढ़ा रहे हैं, ग़लती में पड़कर अपने सदर मुक़ाम के हुक्म के खिलाफ़ कोई कार्रवाई कर बैठती है। ऐसी कार्रवाई को ही हार कहेंगे। इसलिए इस विषम परिस्थिति में कांग्रेसियों से मैं अनुरोधपूर्वक कहूँगा कि वे एक भी ऐसी कार्रवाई न करें, जिसमें कि अनुशासनहीनता या विरोध की गंध हो। कांग्रेसजनों को जान लेना चाहिए कि ऐसी कार्रवाई से वे कांग्रेस के स्व-मान पर आघात करेंगे और उसके प्रभाव को कमजोर करेंगे।''

'हरिजन सेवक', २१ अक्तूबर, १९३९.

: ११ :

वायसराय की घोषणा

[युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों को स्पष्ट करने की कांग्रेस की मांग पर वायसराय ने जो घोषणा की, उसके आवश्यक भाग नीचे दिये जाते हैं—सं०]

लड़ाई आरम्भ होने के बाद से और विशेषकर पिछले चार हफ्तों से मुझे कोई ५२व्यक्तियों के साथ पूरी तरह से साफ-साफ बातचीत करने का मौका मिला। गान्धीजी, कांग्रेस के सभापति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद और कांग्रेस-कार्यसमिति के सदस्य तथा मि० जिन्ना और मुस्लिमलीग के प्रतिनिधि, नरेन्द्र-मण्डल के चांसलर तथा ब्रिटिश भारत के राजनैतिक जीवन के खास-खास व्यक्तियों से मैं मिला। जैसी कि आशा की जाती थी विभिन्न विचारों के प्रतिनिधियों के साथ बात-चीत करने से मुझे उनके दृष्टि-बिन्दुओं का पता चला।

वे मुख्य बातें जिन पर कि स्थिति के स्पष्टीकरण की मांग की गई है, निम्नलिखित हैं—

१. सम्राट की सरकार के लड़ाई लड़ने में क्या उद्देश्य हैं? और वे किस सीमा तक ऐसे हैं कि भारत अपने लम्बे इतिहास और महान परम्पराओं के साथ उन्हें अपना सकता है?

२. वैधानिक क्षेत्र में भारत का भविष्य क्या होगा? सम्राट की सरकार के इस सम्बन्ध में क्या विचार हैं? क्या यह सम्भव है कि उन विचारों को ठीक-ठीक रूप से इस प्रकार व्यक्त कर दिया जाय कि जिससे संसार को, जहांतक ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत भारत के दर्जे का संबन्ध है, कोई सन्देह न रहे?

३. भारत की और उसकी जनता की युद्ध-चालन में अधिक-से-अधिक सहयोग देने की इच्छा को किस प्रकार ठीक तरीके से संतुष्ट किया जा सकता है?

पहिले मैं इस बात पर विचार करूंगा कि वर्तमान स्थितियों और लड़ाई की,

जिसमें कि हम फंसे हुए हैं, इस अवस्था में किस हद तक हमारे ध्येयों के स्पष्टीकरण की मांग का निश्चित और संतोषजनक उत्तर दिया जा सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर देने में मैं भारत के प्रति अपने ध्येयों के प्रश्न को छूना नहीं चाहता। उस पर तो ऊपर दिये दूसरे प्रश्न का जवाब देते समय मैं पृथक रूप से विचार करूंगा। सम्राट की सरकार ने स्वयं अबतक लड़ाई चलाए रखने के अपने ध्येयों को पूर्ण निश्चय के साथ स्पष्ट नहीं किया है। यह साफ है कि ऐसा स्पष्टीकरण लड़ाई की बाद की अवस्था में ही किया जा सकता है, और जब ऐसा स्पष्टीकरण किया जायगा, तब वह किसी एक ही मित्र-राष्ट्र के ध्येयों का वक्तव्य न होगा। लड़ाई के खत्म होने से पहिले संसार की स्थिति और उस स्थिति में जो आज हमारे सामने हैं, बहुत से परिवर्तन हो सकते हैं। और अधिकतर बात तो उन परिस्थितियों पर निर्भर करती है जिनमें कि लड़ाई का अंत होता है। लड़ाई के चालू रहने के अर्से पर भी वह बात निर्भर रहेगी।

इन परिस्थितियों में इतिहासों के अनुभव से पता चलता है कि युद्ध की इस इतनी शुरू की अवस्था में जिसमें कि आज हम हैं, युद्ध के उद्देश्य निश्चित शब्दों में बताना अबुद्धिमत्ता और अव्यावहारिकता है। लेकिन जो कारण मैं ऊपर दे चुका हूँ, उनसे युद्ध के उद्देश्यों को निश्चित करना संभव न होने का अर्थ यह नहीं है कि भारत, ब्रिटेन या किसी भी मित्र-राष्ट्र की जनता के मन में उन ध्येयों के बारे में, जिनके कारण हम युद्ध के लड़ने के लिए प्रोत्साहित हुए हैं, कोई वास्तविक संदेह या अनिश्चितता है। परिणामतः जो युद्ध चल रहा है उसके बारे में हमारे सामन कुछ व्यापक ध्येय हैं। हम आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए लड़ रहे हैं, चाहे वह आक्रमण हमारे विरुद्ध हो या और किसी दूसरे के। पिछले दिनों में हमारे आम उद्देश्य प्रधान मन्त्री ने इस प्रकार प्रकट किये हैं—"हम अपने लिए किसी प्रकार का भौतिक लाभ नहीं चाहते। न हमारा उद्देश्य केवल विजय प्राप्त करना ही है। बल्कि उससे परे एक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली की स्थापना करना हमारा उद्देश्य है जिसका अर्थ होगा कि लड़ाई आने वाली पीढ़ियों के लिए अनिवार्य न हो। यूरोप के सब राष्ट्रों की भांति हम शान्ति चाहते हैं; लेकिन वह शान्ति वास्तविक और स्थिर शान्ति होनी चाहिए। वह ऐसी बेचैन करनेवाली संधि नहीं होनी चाहिए कि जिसमें निरन्तर खतरों और धमकियों से बाधा पड़ती रहे।" मेरा विचार है कि यह वक्तव्य इस बात को स्पष्ट कर देता है कि हम किस उद्देश्य के लिए लड़ रहे हैं और इस बात के औचित्य को भी सिद्ध करता है (यदि वैसे किसी औचित्य की आवश्यकता है तो) कि भारत अपनी नैतिक सहायता और सदिच्छा उस ध्येय के पूरा करने में दे।

अब मैं दूसरे प्रश्न पर आता हूँ जो कि मेरे सामने रक्खा गया है। यह प्रश्न भारत के भविष्य और उसकी वैधानिक उन्नति की रूप-रेखाओं के बारे में है। निस्संदेह यह प्रश्न मेरी बातचीत पर आधार रखते हुए बड़ा महत्वपूर्ण है और इस देश की समस्त पार्टियां उसमें दिलचस्पी रखती हैं। आज दिन भारत की वैधानिक

स्थिति और सम्राट की सरकार की नीति सन् १९३५ के गवर्नमेण्ट ऑव इंडिया एक्ट की धाराओं के अधीन है। इसका वह भाग जिसमें कि ब्रिटिश भारत के लिए प्रांतीय स्वायत्त की योजना है, लागू हो चुका है और लगभग २॥ वर्ष से एक्ट की योजना के अनुसार प्रान्त अपना शासन चला रहे हैं। सब मिलाकर देखा जाय तो उन्हें भारी सफलता भी मिली है, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता, हालांकि जबकभी कठिनाइयां भी सामने आती रही हैं। इन प्रान्तों में कोई भी राजनैतिक पार्टी शक्तिशाली सही, लेकिन संतोष के साथ हम सब २॥ वर्ष के सार्वजनिक कामों के शानदार रिकार्ड को देख सकते हैं। प्रान्तों ने अपने अनुभव से यह निस्संदेह प्रकट कर दिया है कि एक्ट के लागू करने से चाहे मामूली समस्यायें उठ खड़ी हुई हों, या समय-समय पर एक्ट के प्रान्तों में अमल में लाने से कठिनाइयां पैदा हुई हों; लेकिन एक्ट की योजना दृढ़ है और उससे जनता द्वारा निर्वाचित सरकारों को बहुत से अधिकार मिल गए हैं।

सम्राट की सरकार के भारत के प्रति क्या उद्देश्य और इरादे हैं? इसके उत्तर में मैं सम्राट की ओर से और उनके पूरे अधिकार के साथ भारत-मन्त्री के द्वारा कामन्स-सभा में ६ फरवरी १९३५ को दिये गए वक्तव्य की ओर संकेत करता हूँ। वक्तव्य से स्थिति निस्संदेह स्पष्ट हो जाती है। वह वक्तव्य १९१९ के एक्ट की भूमिका में दी गई प्रतिज्ञा की ओर संकेत करता है। उससे यह भी स्पष्ट होता है कि सम्राट की सरकार की इच्छा उस प्रतिज्ञा को रद्द करने की नहीं है। वायसराय की हैसियत से लार्ड इरविन ने सन् १९२९ में उस काल की सरकार की ओर से अधिकार पाकर उस भूमिका का जो अर्थ लगाया था, उस अर्थ की भी यह वक्तव्य पुष्टि करता है। वह अर्थ था कि—"भारत की प्रगति का स्वाभाविक ध्येय औपनिवेशिक पद की प्राप्ति है।" यहां मुझे इन शब्दों पर ठहरने की आवश्यकता नहीं है। वे तो स्पष्ट और निश्चित हैं और पार्लमेन्टरी रिकार्ड में साफ-साफ अंकित हैं। उनसे आज सम्राट की सरकार की नीति निश्चित और साफ़ प्रकट होती है। इस दिशा में सरकार इरादे और भावी वैधानिक प्रगति और भारत की स्थिति का पता चलता है। मैं केवल यह कहूंगा कि मई १९३७ में सम्राट ने मुझे गवर्नर-जनरल के रूप में जो आदेश-पत्र दिया था, उसमें मुझे आदेश था कि सम्राट के दिये हुए अधिकार को मैं इस प्रकार काम में लाऊं कि जिससे "भारत और अपने साम्राज्य के संयुक्त राज्यों के बीच सम्बन्ध बढ़ें और भारत को हमारे उपनिवेशों में उसका उचित स्थान प्राप्त हो सके।"

यह नीति है और यह स्थिति है और यह सम्राट की सरकार के इरादे हैं। सन् १९३५ के एक्ट के बारे में मैं कुछ और कहूंगा। एक्ट अधिक-से-अधिक रजामन्दी के, जितनी कि उस समय मिलनी संभव थी, आधार पर बनाया गया था। उसके तैयार करने में जैसा कि सब जानते हैं, ब्रिटिश और भारतीय दोनों राजनीतिज्ञों को परिश्रम करना पड़ा था। भारत के और देशी राज्यों के प्रतिनिधि भी

उसमें शामिल थे। सभी दल इसकी किसी-न-किसी अवस्था पर इसके वाद-विवादों के निकटतर सम्पर्क में आए थे।

जो भी हो सम्राट की सरकार यह मानती है कि जब भारत के भावी संघ-शासन और उस योजना पर विचार करने का मौका आयगा जो स्वर्गीय भारत मन्त्री द्वारा पार्लमेन्ट में दिए गए आश्वासनों को, जिनके बारे में मैं ऊपर जिक्र कर चुका हूं, कार्य रूप देगी, तब उस समय की परिस्थिति देखते हुए यह विचार करना लाजमी हो जायगा कि १९३५ के भारतीय विधान के अनुसार संघ-शासन की विस्तृत योजनाएँ कहाँतक उचित हैं। मुझे सम्राट की सरकार की ओर से यह कहने का अधिकार मिला है कि युद्ध समाप्त होने पर वह भारत की विभिन्न जमातों, दलों, हितों और देशी नरेशों से सलाह करने के लिए तैयार होगी जिससे कि वह विधान में उचित संशोधन करने में उनकी सहायता और सहयोग पा सके।

मुझे विश्वास है कि मैंने जो कुछ ऊपर कहा है उसमें यह स्पष्ट कर दिया है कि सम्राट की सरकार का इरादा यह है कि भारत और सरकार के साम्राज्य के संयुक्त राज्यों के बीच संबंध बढ़ें और भारत को हमारे उपनिवेशों में उचित स्थान प्राप्त हो सके। यही बात गवर्नर-जनरल को दिए गये आदेश-पत्र में है। १९३५ के एक्ट में सरकार की जो योजना बनाई गई है, वह इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक आवश्यक अवस्था के रूप में है। मैंने यह स्पष्ट कर दिया है कि सम्राट की सरकार युद्ध का अन्त हो जाने पर विधान में निहित योजना में भारतीय लोकमत की दृष्टि से संशोधन करने के लिए तैयार हो जायगी। लेकिन यह भी मैं स्पष्ट कर दूँ कि सरकार का यह उद्देश्य है जैसा कि हमेशा पिछले दिनों में रहा है कि वह हर प्रकार से अपनी शक्तिभर इस आशा से मेल बढ़ाने की कोशिश करेगी कि भारत के अपने उद्देश्य की ओर प्रगतिशील होने में वह सहयोग दे सके।

इस संबंध में मैं इतना और कहदूं कि पिछले दिनों की मेरी बातचीतों में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों ने इस आवश्यकता पर बहुत ज़ोर दिया है कि उन्हें आश्वासन मिलना चाहिए कि यदि विधान में कोई संशोधन हुआ तो उसमें उनके विचारों और हितों को भी पूरी तरह से ध्यान में रक्खा जायगा। इस बारे में मैं इतना ही कहूंगा कि एक दशक से पहले से ही—तीनों गोलमेज परिषदों और ज्वाइंट सलेक्ट कमेटी में—सम्राट की सरकार इस देश के सब दलों के प्रतिनिधियों के साथ सलाह-मशविरा करती आई है और उनकी राय भी उसने ली है। यह तो किसी को ख़याल भी नहीं करना चाहिए कि अब हम नए सिरे से योजना तैयार करेंगे या भारत के भावी विधान के किसी भी महत्वपूर्ण भाग में बिना उन लोगों की राय लिए, जो हाल के पिछले सालों में वैसे ही कामों में सम्राट की सरकार और पार्लमेंट के निकट सम्पर्क में रहे हैं, कोई परिवर्तन करेगी।

मैंने विभिन्न दलों के उन नेताओं के साथ बहुत खुलकर बातचीत की है जो वैधानिक स्थिति के विषय में आकर मुझसे मिले हैं। हमने विचार किया है कि हम

अपनी इच्छा को कार्यान्वित कैसे करें। और भी बहुत सी आवश्यक बातों की हमने जांच की और उनकी अच्छाई और बुराई को सामने रखने में हममें से किसीने भी हिचकिचाहट नहीं की। उन बहुत सी बातों की आज विस्तार से मैं समीक्षा नहीं करूंगा। हाँ, इतना कहूंगा कि भारत के बड़े दलों और देशी नरेशों के प्रतिनिधियों से हुई बातचीत और उनके विचारों को (जिनपर सब सम्मत नहीं हैं) देखते हुए मेरी राय में सही हल यह होगा कि एक परामर्श-दल कायम किया जाय जिसमें ब्रिटिश भारत के प्रमुख राजनैतिक दलों तथा देशी नरेशों के प्रतिनिधि शामिल हों। गवर्नर-जनरल इसके अध्यक्ष होंगे और वही उस परामर्श-दल की बैठक बुला सकेंगे। इस दल का काम यह होगा कि युद्ध के स्वरूप और युद्ध की कार्रवाइयों से सम्बन्धित प्रश्नों पर भारतीय लोक-मत का समन्वय किया जाय।

कुछ व्यावहारिक कारणों से इस दल का आकार बड़ा नहीं होगा। लेकिन सरकार की इच्छा है कि यह दल सब पार्टियों का प्रतिनिधित्व करे। इसका पैनल विभिन्न राजनैनिक पार्टियाँ क़ायम करेंगी, उनमें से स्वयं गवर्नर-जनरल कार्यकर्त्ताओं का चुनाव करेंगे और वही उनमें से उन व्यक्तियों को चुनेंगे जो दल की बैठकों में सम्मिलित हो सकेंगे।

इस प्रश्न पर मैं निकट भविष्य में राजनैतिक नेताओं तथा देशी नरेशों से सलाह करूँगा। इसमें मुझे सन्देह नहीं कि इस प्रकार के दल से तथा इस सम्बन्ध में होनेवाली व्यवस्थाओं से देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत के युद्ध-चालन के साथ सम्बन्ध स्थापित होने में विशेष सहायता मिलेगी। और मुझे भरोसा है कि सब दलों और हितों के प्रतिनिधियों के इस प्रकार के सम्बन्ध से इस देश के विभिन्न दृष्टिकोणोंवाले व्यापक सम्बन्ध की नींव पड़ेगी जिससे सामूहिक रूप में भारत को भविष्य में बहुत लाभ पहुँचेगा।

: १२ :

निराशाजनक घोषणा

[वायसराय की घोषणा पर महात्मा गांधी ने वर्धा से नीचेलिखा वक्तव्य प्रकाशित किया —सं०]

"वायसराय की घोषणा बड़ी ही निराशाजनक है। यह कहीं बेहतर होता कि ब्रिटिश सरकार ने इस समय कोई घोषणा करने से इन्कार कर दिया होता। वायसराय के लम्बे वक्तव्य से केवल यही मालूम देता है कि पुरानी भेद-नीति बराबर जारी रहेगी। जहांतक मैं देख सकता हूं, कांग्रेस उसका साथ न देगी, और ब्रिटेन का जो युद्ध हेर हिटलर से हो रहा है, उसमें कांग्रेसी भारत अलग रहेगा। वायसराय की घोषणा से यह साफ़ मालूम होता है भारत के लिए लोकतन्त्रवाद न होगा, यदि ब्रिटेन उसे टाल सके। यह वादा किया गया है कि युद्ध का अन्त होने पर एक और गोलमेज

परिषद होगी। पहले की गोलमेज परिषद की तरह उसका भी निष्फल होना जरूरी है। कांग्रेस ने मांगी थी रोटी, पर मिला जवाब में पत्थर !

"मैं यह कहने की हिम्मत नहीं कर सकता कि भारत के लिए भविष्य में क्या होगा। मैं वायसराय या ब्रिटेन के राजनेताओं को दुःखद फल के लिए दोषी नहीं ठहरा सकता। कांग्रेस को फिर अनिश्चित और विषम परिस्थिति में रहना होगा, कब्ल इसके कि वह इतनी काफी शक्तिशाली और शुद्ध हो जाए कि अपने मकसद तक पहुंच सके। मुझे इसमें शक नहीं कि कांग्रेसजन कार्यसमिति के फैसले का इंतजार करेंगे।"

१८ अक्तूबर, १९३९.

: १३ :

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का वक्तव्य

[वायसराय की घोषणा पर पटना से राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया——सं०]

"अब किसी व्यक्ति के लिए सन्देह करने की गुंजाइश नहीं रही है कि ब्रिटिश नीति वही है, जहाँ सदा थी, अर्थात् जनतन्त्र और हमले का प्रतिरोध करने की बड़ी-से-बड़ी बातें भारत के साथ लागू करने के लिए नहीं हैं।

"वायसराय का वक्तव्य अत्यधिक निराशा-जनक है, मगर आश्चर्यजनक नहीं है। यह दुःख की बात है कि ग्रेटब्रिटेन के पक्ष में उत्पन्न सहानुभूति और शुभेच्छा की लहर को शान्त हो जाने दिया गया है और देश को फिर अविश्वास, सन्देह और दुर्भावना की सतह पर छोड़ दिया गया है।" १८ अक्तूबर, १९३९.

: १४ :

पंडित जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य

[वायसराय की घोषणा पर काँग्रेस की युद्ध-उपसमिति के अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू और मौ० अबुलकलाम आजाद ने निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया—सं०]

"हमने अत्यन्त खेद के साथ वायसराय के वक्तव्य को पढ़ा। यदि ब्रिटिश सरकार की ओर से भारतीय जनता को यही आखिरी जवाब है, तो दोनों के बीच मेल के लिए कोई जगह नहीं है, और हमारे मार्ग सर्वथा अलग-अलग हैं। सारा वक्तव्य उस बात से अछूता है, जिसके लिए भारत, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से, खड़ा है। यह ऐसा वक्तव्य है जो आज से बीस साल पहले असामयिक न होता। आज इसका वस्तुस्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमें स्वाधीनता, जनतन्त्र या आत्म-निर्णय

का कोई ज़िक्र नहीं है। यहाँतक कि उसमें इस बात का भी औचित्य दिखाने की ज़रूरत नहीं समझी गई है कि भारतीय जनता को उसकी राय के बिना इस युद्ध में क्यों घसीटा गया है।

"वायसराय के वक्तव्य से स्पष्ट मालूम होता है कि ब्रिटिश साम्राज्य और उसका आर्थिक ढाँचा भारत में और बाहर बनाये रखना सरकार का ध्येय है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का 'अधिक अच्छी अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली' से यही अभिप्राय है कि इस ढाँचे की रक्षा की जाय और इसको क़ायम रक्खा जाय। इसके अलावा इसका यूरोप के लोगों से सम्बन्ध है, एशिया या भारत से नहीं है। भारत वहीं रहेगा, जहाँ आज है। उपनिवेश वहीं रहेंगे। जहाँ आज हैं। इसका अर्थ है कि साम्राज्यवाद को फलता-फूलता रक्खा जाय।

"वायसराय के वक्तव्य से यह सब मालूम होता है और यदि युद्ध का यही उद्देश्य है तो यह कल्पना करना कठिन है कि ब्रिटिश सरकार भी, जैसी कि वह पुराने और गये-गुज़रे युग में पड़ी है, यह आशा कर सकती है कि कोई आत्मसम्मानी भारतीय उसके साथ सहयोग करेगा।

"कांग्रेस द्वारा बढ़ाया मैत्री का हाथ सरकार ने ठुकरा दिया है। सरकार उनका कहाँ तक प्रतिनिधित्व करती है, यह निश्चित करना उनका काम है, मगर हम वायसराय के वक्तव्य पर उसे इंग्लैण्ड का भारत को उत्तर समझ कर विचार करेंगे। हमारा अगला क़दम क्या होना चाहिए, इस विषय में इस स्थिति में हमारे लिए कुछ कहना समय से पहले और अनुचित होगा। इसका निश्चय करना कार्य-समिति का काम है और इस उद्देश्य से कार्यसमिति की बैठक शीघ्र ही होनेवाली है। समय विकट है और उसे हमारी संयुक्त बुद्धिमत्ता, साहस और अनुशासन और पारस्परिक सहिष्णुता की आवश्यकता है। हमें इस समय प्रतिष्ठा और आत्मसंयम से काम करना चाहिए और भारत की आज़ादी की ख़ातिर हम सबको मिलकर एकसाथ आगे बढ़ना चाहिए।"

१८ अक्तूबर, १९३९.

: १५ :

बहुसंख्यकों का फ़र्ज़ी डर

[**वायसराय की घोषणा के बाद महात्मा गांधी का अल्पसंख्यकों की समस्या पर निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुआ—सं०**]

यह देखकर दरअसल दुःख होता है कि कांग्रेस ने जिस घोषणा की माँग की है ब्रिटिश अखबार और ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अल्पसंख्यकों के हितों की दुहाई देकर उस घोषणा को, मैं कह सकूँ तो, सर्वसाधारण के हित में रुकवाना चाहते हैं। कांग्रेस ने जो मांग रक्खी है, उसके वज़न को अगर अच्छी तरह महसूस न किया गया, तो वह

घोषणा नहीं होगी । यदि ऐसी कोई घोषणा नहीं होती तो काँग्रेसियों को इससे निराश नहीं होना चाहिए । जब स्वतंत्रता का योग्य समय आयेगा, वह मिल जायगी । लेकिन ब्रिटिश सरकार और उसके दोस्तों के लिए यह अच्छा होगा कि वे आसानी से विश्वास कर लेनेवाली दुनिया को अल्पसंख्यकों के हितों की दलील देकर भुलावे में न डालें । ईमानदारी की बात तो यह है कि अँग्रेज़ कह दें कि हम अभी भारत पर अधिकार रखना चाहते हैं । यह इच्छा उनकी स्वाभाविक ही है । भारत को उन्होंने जीता है । अपने विजित देश को कोई तबतक नहीं छोड़ता, तबतक कि विजित लोग सफल विद्रोह नहीं कर लेते, या जागृतिपूर्ण विवेक के द्वारा विजेता अपनी जीत पर स्वयं पछताने नहीं लगता, अथवा विजित प्रदेश से विजेता को किसी क़िस्म का भी लाभ होना बन्द नहीं हो जाता । मैंने उम्मीद की थी और अब भी कर रहा हूँ कि अँग्रेज़— जो लड़ाई से बहुत थके हुए हैं और वर्तमान युद्ध में होने वाले उन्मादपूर्ण कत्लेआम के कारण परेशान हैं, सब प्रकार के झगड़ों से, और इसलिए भारत की समस्या से भी, जल्दी-से-जल्दी निश्चित नहीं हो सकते, जबतक कि भारत उनकी ग़ुलामी में जकड़ा हुआ है ।

"मैं जानता हूँ कि कुछ लोग मुझसे इस कारण रुष्ट हैं कि मैंने यह दावा किया है कि कांग्रेस ही एकमात्र ऐसी संस्था है, जो सम्पूर्ण भारतवासियों का प्रतिनिधित्व कर सकती है । यह कोई निरे घमंड की ही कल्पना नहीं है । कांग्रेस-विधान की पहली धारा में ही यह स्पष्ट है । कांग्रेस समस्त भारत की स्वतंत्रता चाहती है और उसके लिए काम करती है । वह न केवल बहुसंख्यकों की प्रतिनिधि है, और न सिर्फ़ अल्पसंख्यकों की । वह तो बिना किसी भेदभाव के सबका प्रतिनिधित्व करती है । इसलिए जो लोग इसका विरोध करते हैं, उन्हें भी स्वतंत्रता का दावा स्वीकृत होने पर चिन्ता की ज़रूरत नहीं । जो लोग इस दावे का समर्थन करते हैं, वे कांग्रेस के इस दावे की ताक़त ही बढ़ाते हैं ।

ब्रिटेन अबतक दुनिया के सामने ऐसे हिन्दुस्तानियों को ही लाने की कोशिश करता रहा है, जो भारत में ब्रिटेन को शासक और विभिन्न दावेदारों में पंच बनाये रखना चाहते हैं । ऐसे लोग हमेशा रहेंगे । सवाल तो यह है कि क्या ब्रिटेन के लिए यह उचित है कि वह भारत पर अपना अधिकार क़ायम रखने के लिए हमारे आपसी झगड़ों का इस तरह ढिंढोरा पीटता फिरे, अथवा उसके लिए यह उचित है कि वह अपनी भूल को महसूस करे और भारत पर ख़ुद अपना शासन-विधान बनाने की ज़िम्मेदारी डालकर निश्चित हो जाये ?

"और, फिर ये अल्पसंख्क कौन ह ? धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक दृष्टियों से अल्पसंख्यक गिने जाते हैं । इस तरह मुसलमान (धार्मिक), दलित श्रेणियाँ (सामाजिक), लिबरल (राजनैतिक), राजे-महाराजे (सामाजिक), ब्राह्मण (सामाजिक), अब्राह्मण (सामाजिक), लिंगायत (सामाजिक), सिक्ख (सामाजिक ?) ईसाई—प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक (धार्मिक), जैन (सामाजिक ?), ज़मींदार (राजनैतिक) अल्पसंख्यक होते हैं । आल इण्डिया शिया पोलिटिकल कान्फ्रेंस के सेक्रेटरी

का एक पत्र मेरे पास आया है, जिसमें शियाओं को एक अलग ही फिरका मानने की माँग की गई है। इस अजीब गड़बड़झाले में कौन बहुसंख्यक होने का दावा कर सकता है ? मुसलमान भी कई हिस्सों में बँटे हुए हैं और ईसाइयों का भी यह हाल है। ऐसे प्रत्येक दल को स्वीकार करना ब्रिटिश सरकार की नीति रही है, जो पर्याप्त ज़ोर से अपनी आवाज़ बुलन्द करने लगे और दूसरों के लिए कुछ तकलीफ़देह बन जाये। मैंने अल्पसंख्यकों की यह मनगढ़न्त तस्वीर ही नहीं खींची है। यह बिलकुल असली चित्र है। ख़ुद का इन सब दलों से, जिनका मैंने ज़िक्र किया है, वास्ता पड़ा है। मेरी सूची अभी पूरी नहीं है। यह तो केवल उदाहरण-मात्र है। इसे बहुत दूर तक लम्बा खींचा जा सकता है।

"मैं जानता हूँ कि हिन्दुओं को बहुसंख्यक कहने का फ़ैशन-सा चल पड़ा है। लेकिन हिन्दुत्व भी एक बहुत लचीला शब्द है। इसकी निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती। और, सब हिन्दू, मुसलमानों या ईसाइयों की तरह कोई एक समजातिक नहीं हैं। और जब कोई व्यक्ति प्रान्तीय धारा-सभाओं में बहुसंख्यकों का विश्लेषण करने लगता है, तभी यह महसूस होता है कि धारा-सभा कितने अधिक तथाकथित अल्पसंख्यकों का समूह है। दूसरे शब्दों में और सचमुच भी जहाँतक हिन्दुस्तान का ताल्लुक़ है,—यहाँ केवल राजनैतिक आधार पर ही पार्टियों का संगठन हो सकता है, अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक साम्प्रदायिक पार्टियाँ नहीं बन सकतीं। बहुसंख्यकों के अत्याचारों का शोर बिलकुल कृत्रिम आंदोलन है।

"राजेन्द्रबाबू ने जनाब जिन्ना साहब को कांग्रेस या मुस्लिम-लीग के सवाल एक पंच के सुपुर्द करने की बात लिखी थी। मुझे मालूम हुआ है कि उन्होंने इसके जवाब में लिखा है कि मैंने यह सारा मामला वायसराय के सामने पेश कर दिया है और उनसे इस मामले को जल्दी हाथ में लेने की प्रार्थना की है, चूँकि वायसराय और प्रान्तों के गवर्नरों को विधान के मातहत यह अधिकार और ज़िम्मेदारी दी गई है कि वे अल्पसंख्यकों के अधिकारों व हितों की रक्षा करें।

"जिन्ना साहब ने कहा है—'अब यह सारा मामला हिज़ एक्सीलेंसी के विचाराधीन है और वही एक ऐसे योग्य अधिकारी हैं, जो ऐसे मामलों को अपने हाथ में ले सकते हैं और हमारी ज़रूरतें पूरी करने के लिए उचित क़दम उठा सकते हैं। वायसराय ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं, जो उन प्रान्तों के मुसलमानों को पूर्ण सन्तोष और आश्वासन दे सकते हैं, जिन प्रान्तों का शासन-सूत्र आज काँग्रेस-मंत्रियों के हाथ में है।'

"यह दुर्भाग्य की बात है कि जिन्ना साहब ने राजेन्द्रबाबू के इस युक्तियुक्त प्रस्ताव को ठुकरा दिया। क्या यह मित्रता के बढ़ाये हुए हाथ को ठुकराना नहीं है ? कुछ भी हो वायसराय की जाँच और कांग्रेसी-मंत्रियों के विरुद्ध लगाये गये आरोपों पर उनके फ़ैसले के विरुद्ध कोई व्यक्ति कुछ नहीं कह सकता। हमें उम्मीद करनी चाहिए कि वह शीघ्र ही जाँच करेंगे। मुसलमान अल्पसंख्यक माने जाते हों या बहुसंख्यक, उनके तथा अन्य सम्प्रदायों के अधिकारों व स्वार्थों, धार्मिक, सामाजिक,

सांस्कृतिक और राजनैतिक हितों की, पवित्र धरोहर की भांति, इज्ज़त व रक्षा करनी चाहिए। और भारत की स्वतन्त्रता से इन अधिकारों की रक्षा में कोई अन्तर नहीं आयेगा। सच तो यह है कि उस समय इन अधिकारों की रक्षा और भी अच्छी तरह होगी, क्योंकि स्वतन्त्रता के घोषणापत्र के बनाने में राष्ट्र के सब प्रतिनिधियों—मुसलमानों और अल्पसंख्यकों, वास्तविक या तथाकथित अल्पसंख्यकों का भी काफ़ी हाथ रहेगा।

"एक क्षण के लिए कल्पना करें कि अगर अँग्रेज़ एकदम अचानक ही यहाँ से चले जायँ और यहाँ शासन करने के लिए कोई भी आक्रान्ता न रहे तो क्या होगा? यह कहा जा सकता है कि पंजाबी, वे सिक्ख हों, मुसलमान हों, या कोई दूसरे हों, सारे हिन्दुस्तान पर जबरन क़ब्ज़ा कर लेंगे। यह भी बहुत संभव है कि गोरखे पंजाबियों से मिल जायँ। यह भी कल्पना कर लीजिए कि ग़ैर-पंजाबी मुसलमान पंजाबियों के साथ भारत पर अधिकार करने के लिए मिल जाते हैं। तब कांग्रेसी जो ज्यादातर हिन्दू हैं, कहां रहेंगे? यदि वे तबतक भी सच्चे अहिंसक रहें, तो उन्हें ये लड़ाके तंग नहीं कर सकेंगे। वे कांग्रेसी इन लड़ाकों से मिलकर ताक़त को बाँटना नहीं चाहेंगे, पर उसके विपरीत यह कोशिश करेंगे कि उनके निःशस्त्र देशवासी इन लड़ाकों के शिकार न होने पायें। इसलिए यदि किसीको अधिक शक्तिशाली तत्त्व से बचाव के लिए ब्रिटिश संरक्षण की आवश्यकता हो सकती है तो वे कांग्रेसी और वे हिन्दू या दूसरे लोग ही हो सकते हैं, जिनका प्रतिनिधित्व कांग्रेस करती है। इसलिए सवाल यह नहीं रह जाता कि तादाद में कौन ज्यादा है, बल्कि यह हो जाता है कि मज़बूत कौन है। इसका एक ही जवाब हो सकता है। अल्पसंख्यकों के ख़तरे की आवाज़ उठानेवालों को नाममात्र के बहुसंख्यकों से डरने की कतई ज़रूरत नहीं है। इनकी बहुसंख्या केवल काग़ज़ पर लिखी बहुसंख्या है। फिर यह कुछ ज्यादा कर भी नहीं सकती, क्योंकि यह सैनिक दृष्टि से बहुत कमज़ोर है। यद्यपि यह बात असत्य मालूम पड़ती है, किन्तु अक्षरशः यह सच है कि तथाकथित अल्पसंख्यकों को जो थोड़ा-बहुत डर है भी, उसका आधार सिर्फ़ तबतक है, जबतक कि दुर्बल बहुसंख्या के पास प्रजातंत्र का खेल खेलने के लिए ब्रिटिश शस्त्र-बल का सहारा है। लेकिन ब्रिटिश-सत्ता जबतक चाहेगी, तबतक कभी एक पार्टी का, और कभी दूसरी पार्टी का, इन पार्टियों का नाम वह जो चाहे रक्खे—साथ देकर यह खेल कामयाबी के साथ खेलती रहेगी। और यह ज़रूरी नहीं है कि इसमें ब्रिटिश बेईमानी ही करें। ईमानदारी के साथ वे यह विश्वास कर सकते हैं कि जबतक भारत में इस तरह दो पार्टियाँ आपस में लड़ती रहती हैं, इन दोनों पार्टियों में संतुलन रखने की ईश्वरीय प्रेरणा के अनुसार उन्हें भारत में रहना ही चाहिए। लेकिन यह मार्ग प्रजातंत्र का नहीं है। यह तो फ़ासिज्म, नाज़िज्म, बोलशविक या साम्राज्यवाद—ये सभी 'जिसकी लाठी उसकी भेंस' के सिद्धान्त के रूप हैं—का मार्ग है। मैं खुशी से यह आशा कर सकता हूँ कि यह युद्ध इस स्थिति को बदल देगा। पर यह तभी हो सकता है, जबकि भारत को स्वतंत्र मान लिया जाये और वह स्वतंत्र भारत राजनैतिक मैदान में भी विशुद्ध अहिंसा का परिचय दे।" २१ अक्तूबर, १९३९.

: १६ :

कांग्रेस-कार्यसमिति का प्रस्ताव

[२२ अक्तूबर १९३९ को कांग्रेस-कार्यसमिति ने वायसराय की घोषणा के बाद निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया—सं०]

''कांग्रस ने ब्रिटेन से यह पूछा कि उसके युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्य क्या है और उन्हें भारत पर कैसे लागू किया जायगा। वायसराय ने उसका जो उत्तर दिया है, वह इस समिति की राय में एकदम निराशाजनक है और इससे उन लोगों में असन्तोष पैदा हो जायगा जो भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं अथवा कटिबद्ध हैं। ब्रिटेन के युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्य क्या हैं, यह मांग न केवल भारत, बल्कि संसार के उन लाखों और करोड़ों लोगों ने पेश की थी, जो युद्ध व हिंसा तथा फ़ासिस्ट व साम्राज्य-वादी प्रणालियों से ऊब चुके थे। इन प्रणालियों से राष्ट्रों व जनता का शोषण होता है और इस शोषण का नतीजा हमेशा युद्ध हुआ करता है।

''वायसराय का वक्तव्य तो पुरानी साम्राज्यवादी नीति को फिर से दोहराना है। कुछेक पार्टियों के मतभेदों का जो जिक्र किया गया है, इस समिति की राय में उससे ब्रिटेन के असली इरादों पर पर्दा डालने की कोशिश की गई है। समिति तो परीक्षा के तौर पर यह देखना चाहती थी कि ब्रिटेन भारत को क्या देना चाहता है और इसीलिए उसने यह पूछा था कि ब्रिटन के युद्ध के सम्बन्ध में क्या उद्देश्य हैं, फिर चाहे विरोधी पार्टियों का रुख कुछ भी क्यों न हो।

''कांग्रेस सदैव अल्पसंख्यक जातियों को उनके अधिकार सुरक्षित रखने की गारण्टी देने की हामी रही है। कांग्रेस जो स्वाधीनता चाह रही है, वह केवल कांग्रेस, या किसी खास पार्टी अथवा जाति के लिए ही नहीं है, बल्कि वह समूचे राष्ट्र के लिए है और उन जातियों के लिए है, जो भारत-राष्ट्र का निर्माण करती हैं। इस स्वाधीनता को स्थापित करने एवं समूचे राष्ट्र की इच्छा को जानने का एकमात्र तरीका प्रजातत्री है।

''इसलिए यह समिति वायसराय के वक्तव्य को हर सूरत में दुर्भाग्यपूर्ण सम-झती है।

''इन अवस्थाओं में कांग्रेस ग्रेट ब्रिटन को कोई सहायता नहीं दे सकती; क्योंकि ऐसा करने का अर्थ साम्राज्यवादी नीति का समर्थन करना होगा, जिसको कांग्रेस सदा खत्म करने की कोशिश में रही है। इस दशा में बतौर प्रथम कदम के समिति कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों से अपने त्याग-पत्र देने को कहती है।

''साथ ही समिति राष्ट्र से इस नाज़ुक समय में समस्त आन्तरिक मतभेदों का अन्त करने एवं भारत की स्वतन्त्रता के लिए संगठित रूप से कार्य करनें की अपील करती है। समिति सब कांग्रेस कमेटियों व काँग्रेस कार्यकर्ताओं से सब परिणामों के

लिए तयार रहने तथा कार्यों व शब्दों पर पूरा संचय रखने का अनुरोध करती है, ताकि कोई ऐसी बात कही या की न जाय जो कि भारत के सम्मान अथवा उन सिद्धान्तों के विरुद्ध हो जिनके लिए कि कांग्रेस खड़ी है। समिति कांग्रेसियों को भद्रअवज्ञा आन्दोलन, राजनैतिक हड़ताल आदि कोई भी ऐसा काम करने के खिलाफ़ चेतावनी देती है।

"समिति भारत में ब्रिटिश सरकार की हलचलों का निरीक्षण करेगी और जब भी आवश्कयता पड़ेगी कांग्रेस अगला कदम उठाने में कभी कोई हिचकिचाहट न करेगी। समिति सब काँग्रेसियों को यह बतला देना चाहती है कि मुकाबिला करने के प्रत्येक कार्य के लिए कांग्रेस में पूरे अनुशासन व संगठन की जरूरत है। समिति महसूस करती है कि अतीत में जब कांग्रेस ने अहिंसात्मक मुकाबिला किया तब कभी-कभी उसमें हिंसा का सम्मिश्रण हो गया था। समिति कांग्रेसियों को यह भली-भांति जतला देना चाहती है कि आगे जो भी अहिंसात्मक लड़ाई लड़नी पड़े, वह सब तरह की हिंसा से बरी हो और इस सम्बन्ध में कांग्रेसियों को वे प्रतिज्ञायें याद रखनी चाहिएँ, जो कि सन् १९२१ ई० में अहमदाबाद-कांग्रेस में की गई थीं और बाद को बार-बार दोहराई जा चुकी हैं।"

: १७ :

राष्ट्रीय-पंचायत पर छोड़ दें

[२१ अक्तूबर को बम्बई के "टाइम्स ऑव इंडिया" पत्र के संवाददाता ने वर्धा में महात्मा गांधी से पूछा कि वायसराय के वक्तव्य में जो यह कहा गया है कि युद्ध के अन्त में हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों की एक कान्फ्रेंस करने का विचार है, उसके बारे में आप क्या सोचते हैं। इसी सम्बन्ध में "टाइम्स ऑव इंडिया" ने अपने एक अग्रलेख में महात्माजी से अपील भी की थी। उक्त प्रश्न के उत्तर में महात्माजी ने कहा—सं०]

'वायसराय के वक्तव्य को चाहे जिस तरह से जितना भी समझा जाये, वह तबतक मंजूर न होगा, जबतक कि कांग्रेस की वास्तविक मांग न मानी जायगी। वायसराय के शब्द बहुत गोलमोल हैं, और उनका स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता। उन शब्दों के द्वारा सबकुछ बहुत खूबसूरती के साथ अनिश्चित अवस्था में छोड़ दिया गया ह, और उनसे यह नहीं मालूम होता कि ग्रेट ब्रिटेन हिन्दुस्तान को अधिकार देना चाहता है।

"कांग्रेस यह चाहती है कि हिन्दुस्तान को एक स्वतन्त्र राष्ट्र की तरह स्पष्टतया स्वीकार किया जाये। हिन्दुस्तान उत्साह के साथ लड़ाई में शरीक हो, इसके लिए यह जरूरी है कि उसके साथ ऐसे शब्दों में बातें की जायें कि उनका दूसरा कोई अर्थ न निकले।

"निश्चय ही कांग्रेस जो कुछ चाहती है, उसे स्वीकार करना आसान है, अगर स्वीकार करने की दिली इच्छा हो। वायसराय के वक्तव्य में मुझे वह इच्छा नहीं मिली। कान्फ्रेंस में कौन लोग रहेंगे ? क्या वे, जिन्हें वायसराय या भारत-मंत्री बुलायेंगे ? उन्हें भारतीय प्रतिनिधि सच्चाई के साथ कैसे कहा जायगा ? संदेह को दूर करने के लिए कांग्रेस ने कहा था कि व्यापक निर्वाचन के आधार पर पुरुषों और स्त्रियों को चुना जाये, और इन प्रतिनिधियों की एक महासभा हो। इसी महासभा को कांग्रेस 'राष्ट्रीय-पंचायत' कहती है। जो दल हिन्दुस्तान की आज़ादी चाहता है, वह कैसे इसपर एतराज़ कर सकता है ? क्या इसलिए लोगों को बुलाना ठीक है कि उनसे यह पूछा जाये कि वे आजादी चाहते हैं या नहीं ? क्या ग़ुलाम से उसकी आज़ादी के बारे में उससे राय लेनी चाहिए ? यह विषय राष्ट्रीय-पंचायत के निर्णय करने का है कि औपनिवेशिक दर्जा होगा या क्या होगा, और वह कम होगा या ज्यादा ? जनता के प्रतिनिधियों को इसकी पूरी छूट होनी चाहिए कि वे स्वतंत्रता के रूप का निर्णय करें।

"यह एक ताज्जुब की बात है कि अल्पसंख्यक दलों को किस तरह कांग्रेस के ख़िलाफ़ उभारा जाता है। निश्चय ही, कांग्रेस का उनमें से किसीसे भी कोई झगड़ा नहीं है। कांग्रेस हरेक अल्पसंख्यक दल के हितों की रक्षा करेगी, बशर्ते कि वे हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता पर कोई आघात पहुंचाकर कुछ लाभ न उठायें। मुसल्मानों, परिगणित जातियों और दूसरे प्रत्येक श्रेणी के पूरे प्रतिनिधि विधान-सभा में रहेंगे, और वे खुद ही अपने विशेष अधिकारों का निर्णय करेंगे। देशी नरेशों और ज़मींदारों को भी डरने की कोई वजह नहीं, अगर वे अपनी प्रजा के प्रतिनिधियों की हैसियत से उसमें उपस्थित हों। आज़ाद भारत किसीके भी स्वार्थों का आम जनता के स्वार्थों से संघर्ष होना सहन न करेगा, वे चाहे मुसल्मान, दलित, ईसाई, पारसी, यहूदी, सिक्ख, ब्राह्मण, अब्राह्मण कोई भी हों। पर मैं वायसराय या ब्रिटिश युद्धमंडल को दोषी नहीं ठहराता। स्वतन्त्रता अंग्रेजों या किसी दूसरे की दया पर निर्भर नहीं करती। जनता जब तैयार होगी तो वह खुद ही उसे मिलेगी। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का यह ख़याल है कि हिन्दुस्तान की जनता उसके लिए तैयार नहीं है। कांग्रेस या कोई भी दूसरी संस्था हो, जो लाखों मनुष्यों का प्रतिनिधित्व करती है, उसे इस काम के लिए अपनी शक्तियों और साधनों को मजबूत बनाना होगा।

"मैंने जो यह उम्मीद की थी कि यूरोपीय संघर्ष से अंग्रेज़ राजनीतिज्ञों ने कटु अनुभव प्राप्त करके नये रूप से कार्य करने का ख़याल किया होगा, वह आशा कुछ समय के लिए चूरचूर होगई है।" **'हरिजन सेवक'**, २८ अक्तूबर, १९३९.

: १८ :

दरवाज़ा खुला रख छोड़ा है

[संसार के प्रमुख समाचार-पत्रों के प्रतिनिधियों के विशेष अनुरोध पर महात्मा गांधी ने नीचे लिखा संदेश २२ अक्तूबर १९३९ को दिया—सं०]

"कांग्रेस ने युद्धकाल में शासन-विधान में परिवर्तन करने की मांग नहीं की है। कांग्रेस की मांग केवल इतनी है कि ब्रिटेन यह घोषित करदे कि उसके युद्ध के उद्देश्यों में, लड़ाई के बाद उसके निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा तैयार किए गए चार्टर (अधिकारपत्र) में हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता भी निहित है। लड़ाई के दरम्यान इस घोषणा पर यथासंभव अधिक-से-अधिक अमल होना चाहिए। अल्पसंख्यकों का प्रश्न तो एक हौआ है—यह बात नहीं कि उसका अस्तित्व नहीं है, बल्कि इसलिए कि उसका उचित हल प्रस्तावित राष्ट्रीय पंचायत द्वारा ही हो सकता है। इस गांठ को खोलने का भार ब्रिटेन पर नहीं, बल्कि हमारी राष्ट्रीय-पंचायत पर है।

"भारतीयों की राय के अनुसार हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न ब्रिटिश शासन की प्रत्यक्ष उपज है। कांग्रस कम-से-कम जो कुछ इस समय कर सकती थी, वह यह कि वह प्रान्तीय हुकूमतों से कांग्रेस मन्त्रियों को वापस बुलाले। ब्रिटेन इस संकट का किस तरह मुकाबिला करता है, इस पर कांग्रेस की अगली कार्रवाई सर्वथा निर्भर है। कांग्रेस नें दरवाजा खुला रख छोड़ा है। ब्रिटेन को अपनी भूल सुधारनी चाहिए।"

: १९ :

कांग्रेस का भविष्य

[पण्डित जवाहरलाल नेहरू नें बंबई में कुछ पत्र-प्रतिनिधियों से बात करते हुए कहा—सं०]

हर शख्स हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिक मसले के महत्व को स्वीकार करता है, लेकिन जिस तरीके से उसे आगे लाया जा रहा है, वह असली कठिनाइयों से बचने की कोशिश भर है, जैसा कि कांग्रेस कार्यसमिति ने कहा भी है। कांग्रेस इस सवाल के हरेक पहलू पर विचार करने के लिए पूरी तरह से तैयार और राज़ी है। लेकिन इस साम्प्रदायिक मसले को ब्रिटिश सरकार के हाथ में देना तो उसे राजनैतिक प्रगति को रोकने का एक बहाना बनाना है। कहा जाता है कि कांग्रेस तमाम हिन्दुस्तान का प्रतिनिधित्व नहीं करती। बेशक नहीं करती। उसके जो विरोधी हैं, उनका प्रतिनिधित्व वह नहीं करती। लेकिन कांग्रेस के बारे में जो कुछ कहा गया है, वह

यह है कि वह तमाम हिन्दुस्तान की तरफ से बोलने का प्रयत्न और दावा करती है और यह उससे बिल्कुल जुदा बात है। इसका मतलब यह है कि वह जो कुछ माँगती है, वह किसी खास दल, या जाति के लिए नहीं है, बल्कि समूचे राष्ट्र के लिए मांगती है। में खयाल भी नहीं कर सकता कि किस तरह कोई भी हिन्दुस्तानी इस मांग पर आपत्ति कर सकता है, हालांकि लोग कह सकते हैं कि हिन्दुस्तान की उस माँग में अल्पसंख्यकों के जैसे खास हितों की हिफाजत होनी चाहिए। कांग्रेस की यह मांग जनतन्त्र की बुनियाद पर है, क्योंकि कांग्रेस का उद्देश्य हिन्दुस्तान में जनतन्त्रीय राज्य कायम करने का है। जनतन्त्र से अल्पसंख्यकों के हक और हितों की रक्षा बाहर नहीं रहती। लेकिन यह तो एक वाहियात बात होगी अगर अल्प-संख्यकों के नाम पर जनतन्त्र को ही छोड़ दिया जाय।

हिन्दुस्तान में जनतन्त्र हुकूमत के तीन पक्ष हो सकते हैं—फासिज्म, सोवियटिज्म या विदेशी शासन के मातहत हिन्दुस्तान का बराबर गुलाम रहना। इसके सिवाय और किसी पक्ष का मैं विचार नहीं कर सकता। मैं यह मान लेता हूं कि हम सब इस बात पर एकराय हैं कि हिन्दुस्तान में हम फासिज्म नहीं चाहते, और न निश्चय ही हम हिन्दुस्तान में विदेशी हुकूमत चाहते हैं। इसलिए हमारे सामने सिर्फ एक ही पक्ष सोवियट हुकूमत का रूप रह जाता है, जो जनतन्त्र तक पहुंच भी सकता है और नहीं भी पहुंच सकता। हाल ही में हिन्दुस्तान में जनतन्त्र के आदर्श की बहुत-से लोगों ने आलोचना की है। मैं नहीं जानता कि उन्होंने यह भी सोचा है या नहीं कि उस आदर्श को छोड़ देने का नतीजा आखिर क्या होगा। हिन्दुस्तान की मौजूदा हालत में मैं जनतन्त्र के सिवाय और कोई लक्ष्य नहीं देखता। अल्पसंख्यकों को मुनासिब संरक्षण दे देने से जनतन्त्र उससे सम्बन्ध रखने वाले हरेक आदमी के लिए सब से अच्छा होगा। बेशक, बहुसंख्यक हमेशा बहुसंख्यक रहेंगे। कोई भी चीज बहुसंख्यक समाज को अल्पसंख्यक समाज में तब्दील नहीं कर सकती। हाँ, ऐसा सिर्फ फासिस्ट या फौजी गुटबन्दी से संभव हो सकता है। जहां तक मुसलमानों का सम्बन्ध है, वहांतक बहुसंख्यक और अल्प-संख्यक की परिभाषा में बात करना मुग़ालते की बात होगी। एक सात करोड़ का मजहबी जमात अल्पसंख्यक नहीं समझा जा सकता। मुसलमान तमाम हिन्दुस्तान में फैले हुए हैं और कुछ सूबों में उनका बहुमत भी है। से सूबों में अल्पसंख्यकों का मसला बाकी हिन्दुस्तान के मसले से एकदम भिन्न है।

यह मैं जरा भी ख्याल नहीं कर सकता कि ऐसी हालतों में हिन्दू मुसलमानों को सता सकते हैं, या मुसलमान हिन्दुओं पर जुल्म कर सकते हैं, या यह कि हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर मजहबी जमात के रूप में और किसी पर अत्याचार कर सकेंगे। सिख संख्या में बहुत कम है, लेकिन मैं नहीं सोचता कि जरा भी मौका इस बात का हो सकता है कि कोई उन्हें सतावे। यह बदकिस्मती की बात है कि इस साम्प्रदायिक सवाल ने यह नई शक्ल अख्तियार कर ली है और हिन्दुस्तान की

आज़ादी के रास्ते में रोड़े के रूप में उसका इस्तैमाल किया जा रहा है।

पिछले दो सालों में कांग्रेसी सरकारों के ख़िलाफ़ मुसलमानों को कुचलने और उन पर ज़ुल्म करने के भारी इल्ज़ामों से मुझे जितना अचरज और दुःख हुआ है, उतना और किसी बात से नहीं हुआ। कांग्रेस सरकारों ने बहुत-से महकमों के सम्बन्ध में बहुत-सी भूलें की हैं, जैसा कि स्वाभाविक था; लेकिन व्यक्तिगत रूप से मुझे पूरा यक़ीन है कि अल्पसंख्यकों के साथ बर्ताव करने में उन्होंने इस बात का ज्यादा-से-ज्यादा खयाल रक्खा है कि उनके हक़ों को चोट न आवे। अनिश्चित इल्ज़ामों की निष्पक्ष जाँच के लिए हमने कई दफ़ा प्रस्ताव किया है और अभी तक हमारा वह प्रस्ताव क़ायम है। इस पर भी बेबुनियाद वक्तव्य दिए जाने जारी हैं। जहाँतक कांग्रेस का संबंध है, वह साम्प्रदायिक या अल्प-संख्यकों के सवाल के सब पहलुओं पर विचार करने के लिए आज भी तैयार है, जैसी कि वह हमेशा रही है, जिससे सब आशंकाएँ और शुबह दूर हो जाँय और संतोषजनक फैसला हो जाय। लेकिन कांग्रेस ऐसे किसी भी प्रस्ताव पर विचार नहीं कर सकती जो हिन्दुस्तान की एकता और आज़ादी के ख़िलाफ़ जाता हो और जो जनतंत्र के आदर्शों की मुखालफ़त करता हो।

हमारी लड़ाई ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ़ है। हम अपने किसी देशवासी या देश की संस्था से नहीं लड़ना चाहते। यह हिन्दुस्तान की बदकिस्मती है अगर कोई भी हिन्दुस्तानी या कोई संस्था ब्रिटिश साम्राज्यवाद से सन्धि करती है। लेकिन मुझे उम्मीद है कि हिन्दुस्तान ऐसी बदक़िस्मती से बच जायगा।

ऐसे संकट का, जैसाकि आजकल है, एक बड़ा फ़ायदा यह है कि उससे लोगों और संस्थाओं को अपना असली रूप दिखाने के लिए मजबूर होना पड़ता है। तब अनिश्चित शब्दों का कहना और बड़ी-बड़ी बातें बनाना नामुमकिन हो जाता है; क्योंकि उन बातों को अमल में लाना होता है। इस तरह मौजूदा संकट का नतीजा यह होगा कि हिन्दुस्तान की राजनीति से वह कोहरा दूर हो जायगा जिसकी वजह से मसले गड़बड़ में पड़ गये हैं और जनता समझ जायगी कि लोगों के और संस्थाओं के उद्देश्य क्या हैं।

कांग्रेस के भविष्य पर कुछ कहना स्पष्टतः मेरे लिए मुश्किल है। वह बहुत-सी बातों पर मुनहसिर है। मंत्रियों का स्तीफ़ा ही अपने आप में एक भारी बात है। भारी बात वह न होती; लेकिन जिस विशेष स्थिति में स्तीफ़े दिए गये हैं उसने उसे एक भारी बात बना दिया है। यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद की सारी मशीनरी के खिलाफ़ असहयोग का क़दम है। इसके महान् परिणाम होंगे और हम चाहते हैं कि मुल्क उन परिणामों के लिए तैयार रहे। वे परिणाम कब और किस रूप में हमारे सामने आवेंगे, यह इस हालत म बताना मेरे लिए ठीक नहीं है। २५ अक्तूबर, १९३९.

: २० :

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का वक्तव्य

[कांग्रेस की कार्यसमिति के वक्तव्य के साथ राष्ट्रपति डा० राजन्द्रप्रसाद ने निम्नलिखित सर्क्यूलर प्रांतीय कांग्रेस-कमेटियों को भेजा —सं०]

"आप अपने प्रान्त की भाषाओं में प्रस्ताव का अनुवाद करा कर पर्चों के रूप में लोगों में बांट दें। इसके अलावा सार्वजनिक सभाएं करें तथा लोगों को प्रस्ताव के फलितार्थ समझावें। जिन प्रान्तों में सभाओं का किया जाना मना हो, वहां आप सभा न करें। किसी तरह की आज्ञा-भंग न की जाय, न किसी प्रकार का सत्याग्रह किया जाय, सिवाय कुछ मामलों में जबकि युद्ध-उपसमिति की खासतौर से पहले अनुमति ले ली जाय।

"प्रस्ताव के कुछ फलितार्थ यहां दिए जाते हैं—(१) प्रस्ताव तीन भागों में विभक्त है :—

(क) भूमिका।

(ख) मन्त्रिमण्डलों के स्तीफे, और

(ग) अगला कदम।

(२) "भूमिका को समझने के लिए कार्यकर्ताओं को उसे कांग्रेस-कार्यसमिति के १४ सितम्बर १९३९ तथा कांग्रेस-महासमिति के ९ अक्तूबर के प्रस्तावों के साथ पढ़ना चाहिए।

(३) "कार्यकर्ताओं का अधिकांश सम्बन्ध प्रस्ताव के तीसरे भाग से है। इसलिए अब उन्हें कांग्रेस-संस्था को कमज़ोरी, बुराइयों और अनुशासनहीनता से मुक्त करने की कोशिश करनी चाहिए।

(४) सभाओं में चाहे सार्वजनिक हों या प्राइवेट, ब्रिटिश या देश की अन्य पार्टियों की जो कि कांग्रेस के विरुद्ध हैं, आलोचना न की जाय। वे केवल सिद्धांतों तक ही अपने आपको सीमित रक्खें और व्यक्तियों तक न पहुँचें।

(५) चूंकि सत्याग्रह हिंसा का स्थान ले लेता है, इसलिए हरेक सत्याग्रही के लिए पहली आवश्यकता यह है कि उसके हृदय में जरा भी हिंसा न हो। हृदय में अहिंसा भरी हो तो अहिंसात्मक काम से भी अधिक लाभ नहीं होता। इसलिए ज़बतक कि प्रत्येक कार्यकर्ता का यह दृढ़ निश्चय नहीं हो जाता कि अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मन, वचन और कार्य में अहिंसा का होना आवश्यक है, तबतक निष्क्रिय प्रति-रोध असंभव है

(६) यह स्मरण रहे कि अहिंसा एक सर्वव्यापी गुण है। अतः ब्रिटिश शासकों के प्रति सचाई के साथ अहिंसात्मक होने के लिए हमें परस्पर तथा अपने विरोधियों

के प्रति अहिंसात्मक होना चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम संबंधों के बारे में हमारी अहिंसा की आज अग्नि-परीक्षा है। कांग्रेस-जनों ने हिन्दू-मुसलिम दंगों के अवसर पर विशेष-कर अहिंसा दिखाई है। दंगों को रोकने के लिए आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने अपनी जान तक दे दी हैं। वे अब भी किसी तरह की तरफ़दारी न करें।

(७) प्रत्येक कांग्रेस-जन कार्य-क्रम के रचनात्मक भाग का विशेष ध्यान रक्खे। इसलिए प्रत्येक पुरुष या स्त्री चर्खा चलाये या अपने को खादी या अन्य किसी ग्रामोद्योग में लगाये रक्खे।

(८) यदि कार्यकर्ता हिन्दू है तो वह अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलन में जितना दे सके, उतना सहयोग दे।" २८ अक्तूबर, १९३९.

: २१ :

सर सेम्युअल होर का भाषण

[कामन्स सभा में भारतीय प्रश्न पर हुई बहस के दौरान में दिये गए सर से. होर के भाषण का सारांश यहाँ दिया जाता है। भारत के उन्होंने 'कांग्रेसी भारत' और 'ग़ैर-कांग्रेसी भारत' दो विभाजन किये और वायसराय की भारत के विभिन्न नेताओं के साथ हुई मुलाकात को ठीक बनाते हुए उन्होंनें कहा—]

यह संतोष की बात है कि वायसराय केवल मुख्य पार्टियों के नेताओं से ही नहीं मिले, वरन् पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे गरम-दल के नेता से भी मिले हैं।

वायसराय ने भारतीय नेताओं से मुलाकात करने के बाद दो निश्चित प्रस्ताव पेश किए, जिनमें से एक में यह निश्चित और स्पष्ट वक्तव्य है कि युद्ध की समाप्ति के बाद भारत की वैधानिक समस्या पर पुनः विचार होगा। दूसरे में भारत के नेताओं को विश्वास में लेने के लिए वायसराय ने एक परामर्शदात्री समिति की स्थापना का प्रस्ताव किया। कांग्रेस ने उसे अस्वीकार कर दिया।

औपनिवेशिक स्वराज्य एक तथ्य की स्वीकृति है जो कि वस्तुतः अस्तित्व में होती है। औपनिवेशिक स्वराज्य के मार्ग में यदि कोई कठिनाइयाँ हैं तो उनका कारण भारत की जातियों व वर्गों की अनेकता है। भारतीयों को इन विभेदों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। हम इन विभेदों को महान आपत्तिजनक समझते हैं। इस सबंध में अपनी नेकनीयती का प्रमाण साम्प्रदायिक निर्णय के रूप में हम दे चुके हैं। उस समय यदि हम भारतीयों को विभक्त करना चाहते तो कह सकते थे कि पहले अपने मत-भेद दूर करो। ऐसा हमने नहीं किया और साम्प्रदायिक निर्णय दिया, पर साम्प्रदायिक निर्णय के बावजूद भी वे विभेद कायम हैं। जब तक वे दूर न हों, अल्प-संख्यकों के प्रति हम अपनी जिम्मेदारी को नहीं छोड़ सकते। इन विभेदों के कारण ही केन्द्र में उत्तरदायी शासन जारी करने और अखिल भारतीय फ़ेडरल-गवर्मेण्ट की स्थापना का महान आदर्श पूरा नहीं हो सका।

नरेशगण ब्रिटिश भारत के प्रभुत्व से डरते ह। मुसलमान इस बात के प्रबल विरोधी हैं कि केन्द्र में हिन्दुओं का बहुमत हो। अछूत और अन्य अल्पसंख्यक विश्वास करते हैं कि उत्तरदायी शासन का अर्थ है हिन्दू-बहुमत का शासन, जो कि उनके हितों को कुर्बान कर देगा। ये चिन्तायें आज भी मौजूद हैं और जबतक ये मौजूद हैं तबतक सरकार के लिए इस मांग का स्वीकार करना कठिन है कि केन्द्र में पूर्ण उत्तरदायी शासन जारी कर दिया जाय। यदि हम ऐसा करेंगे तो मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यकों और यूरोपियनों के प्रति हम झूठे सिद्ध होंगे।

…परामर्श-दात्री समिति की योजना का उपयोग किया जाय तो साम्प्रदायिक अनेकता के लिए वह संयोजक का काम करेगी।

…असहयोग ! याने कांग्रेस अपनी राह ले और अल्पसंख्यक जातियाँ और ब्रिटिश सरकार दूसरी राह ग्रहण करें ! यदि ऐसा हुआ तो हमारे पास कोई चारा नहीं। सम्राट की सरकार अवश्य चलनी चाहिए। हम इस स्थिति में अन्य किसी भी सरकार के समान वायसराय का पूर्णरूप से समर्थन करेंगे।

…साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं को हम बहुत पहले त्याग चुके हैं। हम विश्वास करते हैं कि हमारा मिशन दूसरों पर शासन करना नहीं ह, बल्कि दूसरों को मदद देना है कि अपना शासन वे अपने आप चलावें। इसी भावना से पार्लमेंट ने डमीनियनों को स्वतंत्रता देनें का क़ानून और इंडिया ऐक्ट पास किया।

…सदियों से लड़ाई का अंत होगया ह और न्याय और व्यवस्था का राज्य है। इस आशा से भारत को असहयोग का वीरान पथ छोड़ देना चाहिए।

२५ अक्तूबर, १९३९.

: २२ :

महात्मा गांधी का वक्तव्य

[सर सेम्युअल होर के कामन्स-सभा में दिये गए भाषण पर वर्धा से महात्मा गांधी ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया--सं.]

"मैंने सर सेम्युअल होर के भाषण को उतने ही ध्यानसे पढ़ा ह जितने से कि उसे पढ़ना चाहिए। उसके पीछे जो समझौते का लहज़ा है, उसकी मैं सराहना करता हूँ। इसलिए मेरे लिए यह परेशानी की बात हो जाती है कि कुछ भी ऐसा कहूँ जो परस्पर विरोधी दिखाई दे। लेकिन सर होर भी एक कर्तव्य की भावना से बोले हैं, मैं आशा करता हूँ कि मुझे भी वही सम्मान प्राप्त होगा। क्या औपनिवेशिक स्वराज्य का भारत के लिए कोई अर्थ है जबतक कि वह स्वाधीनता के समअर्थ न हो ? भारत का जो रूप सर होर के सामने ह, क्या उस रूप में भारत को कामनवैल्थ से पृथक होने का अधिकार है ?

मैं यह घोषणा पसन्द करता हूं कि ब्रिटिशों ने साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाएं छोड़ दी हैं। क्या सर होर भारत के लोगों को स्वतः यह निर्णय करने का अधिकार देंगे कि वाकई उक्त आकाक्षाएँ छोड़दी गई हैं? यदि ऐसा है तो इसका प्रमाण भारत को वैधानिक रूपसे स्वतन्त्र किये जाने के पूर्व ही मिलना चाहिए। जब कांग्रेस द्वारा मांगी गई घोषणा के खिलाफ़ अल्पसंख्यकों की रक्षाकी बात कही जाती है, तब सर सेम्युअल होर का महत्वपूर्ण भाषण अवास्तविक प्रतीत होने लगता है। कांग्रेस ने जिस वस्तु की मांग पेश की है वह भारतीय लोकमत नहीं, बल्कि ब्रिटेन के इरादों का खुलासा करना है।

मैंने यह बताने की कोशिश की है कि दरअसल भारत में अल्पसंख्यक नाम की कोई चीज़ नहीं है, जिसे कि भारत के स्वतन्त्र होने पर खतरा पैदा हो सकता है। यहां भारत में दलित जातियों को छोड़ कोई भी ऐसा अल्पसंख्यक नहीं है, जोकि स्वयं अपनी रक्षा करने के योग्य न हो। मैं देखता हूं कि सर होर ने यूरोपियनों को भी अल्पसंख्यक कहा है। मेरी राय में यूरोपियनों को भी अल्पसंख्यक कहना अल्पसंख्यकों के हितों की पुकार की निन्दा करना है। लेकिन अल्पसंख्यकों की, जो भी वे हैं, रक्षा ब्रिटिश सरकार व कांग्रेस का एक सामान्य ध्येय है। मैं चाहता हूं कि ब्रिटिश सरकार यह याद रक्खे कि सर होर की भाषा में कांग्रेसी भारत के एक असहाय अल्पसंख्यक समझे जाने की सम्भावना है।

मैं सर होर के 'कांग्रेसी भारत' व 'गैर-कांग्रेसी भारत' विभाजन को पसन्द करता हूँ, और यदि गैर-कांग्रेसी भारत में देशी राजा व उनकी प्रजा, मुसलमान, हिन्दू-सभा आदि वे सब शामिल हैं, जोकि कांग्रेसी भारत से मिलने से इन्कार करते हैं, तो कांग्रेसी भारत को गैर-कांग्रेसी भारत के बहुमत से भारी खतरा होगा और कांग्रेस को, चाहे वह निःशस्त्र अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व करती हो, अपना मेल कुछ तो बाहरी शक्ति से और अधिकांश अपनी ही इच्छा से बढ़ाना होगा।

मैं यह जानकर प्रसन्न हूँ कि सर होर ने यह कह दिया है कि वर्तमान ब्रिटिश नीति को मेरे द्वारा सुझाये गये नैतिकता के पैमाने से जांचा जाय। यहां मैं यह कहने का साहस करता हूं कि यदि सर होर का भाषण ब्रिटिश सरकार की ओर से अंतिम शब्द है तो उसमें ब्रिटिश राजनैतिक नैतिकता की कमी पाई जायगी। सर सेम्युअल होर ने असहयोग को एक बेकार सिद्धान्त समझकर मजाक उड़ाया है। मुझे विश्वास है कि यह ऐसा बेकार नहीं है, जैसा कि वह सोचते हैं। इसने लाखों भारतीयों को अपना मूल्य दिखला दिया है और यदि कांग्रेस पूर्णतः अहिंसक रही, (मैं आशा करता हूं वह रहेगी) तो एक बार फिर यह अपना मूल्य साबित करेगी। कांग्रेस का निर्णय कर्तव्य की एक आवश्यक पुकार है। इसने कांग्रेस व ब्रिटिश सरकार को उनकी परीक्षाओं में खड़ा कर दिया है। इसका परिणाम भलाई के सिवा और कुछ न निकलेगा, बशर्ते कि ये दोनों ही मैदान में खेलें।

२७ अक्तूबर, १९३९.

: २३ :

राष्ट्रपति डॉ॰ राजेन्द्रप्रसाद का वक्तव्य

[सर सेम्युअल होर के कामन्स सभा में दिये गए भाषण पर राष्ट्रपति डॉ॰ राजेन्द्रप्रसाद ने वर्धा से नीचेलिखा वक्तव्य दिया—सं॰]

"कामन्स-सभा की बहस में सर सेम्युअल होर द्वारा दिए गए भाषण की मेरे मन पर जो प्रतिक्रिया हुई है उसको महात्मा गांधी का वक्तव्य पूर्ण-रूप से व्यक्त करता है। अतः और कुछ कहना मेरे लिए ज़रूरत नहीं रहता। चूँकि हमें सन्देह था कि जिस स्वाधीनता और जनतन्त्र को अन्य देशों के वास्ते प्राप्त करने में सहायता देने के लिए हमसे कहा जा रहा है, उसको हमें भी ब्रिटेन का देने का इरादा है या नहीं, इसलिए हम ब्रिटिश उद्देश्यों की स्पष्ट घोषणा और वर्तमान अवस्था में उसका अमल चाहते थे। हमें जवाब में कहा गया है कि हम में आन्तरिक भेद हैं, इसलिए हमें स्वाधीनता और जनतंत्र का वचन नहीं दिया जा सकता। भारत की स्वतंत्रता की ओर प्रगति के मार्ग में अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने की समस्या को बाधक बनाया गया है। मैं न उनकी उपेक्षा करता हूँ और न उनका महत्व कम करता हूँ। मगर क्या मैं पूछ सकता हूँ कि ब्रिटिश सरकार ने भारत से यह कब कहा कि भारतीय, जिनमें निस्सन्देह अल्पसंख्यक भी शामिल हैं, अपने लिए जो विधान बनायेंगे उसको वह स्वीकार कर लेगी ?

ब्रिटिश सरकार भारत पर बिना बाह्य हस्तक्षेप के सर्वसम्मत विधान बनाने की ज़िम्मेदारी सौंपे और ऐसा विधान बनने पर उसको क़ानून का रूप देने की प्रतिज्ञा करे। वह उसकी तरफ़ से सच्चा प्रस्ताव होगा। इसके अभाव में अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने की बड़ी-बड़ी बातें वर्तमान स्थिति को बनाये रखने के लिए बहानेबाज़ी है।

यूरोपियनों को अल्पसंख्यकों में गिनना ब्रिटिश हितों के संरक्षण के लिए हुई बहस की याद दिलाता है। भारतीयों को इस वास्ते दोष न देना चाहिए, यदि वे यह ख़याल करें कि अल्पसंख्यकों पर कृपा करने की आड़ में ब्रिटिश हितों की रक्षा की जा रही है। कांग्रेस का आग्रह है कि बालिग़ मताधिकार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों की बनी राष्ट्रीय पंचायत द्वारा बनाया गया विधान भारत को दिया जाय। मगर वे लोग जो औपनिवेशिक स्वराज्य स्वीकार करने के लिए तैयार हैं, वे पूछ सकते हैं कि सर सेम्युअल होर द्वारा वर्णित १९२६ का औपनिवेशिक स्वराज्य क्या वही है जो कि वेस्ट मिन्स्टर क़ानून द्वारा दिया गया है ? यदि हां, तो वेस्ट मिन्स्टर क़ानून का नाम लेने में उन्होंने सकोच क्यों किया ?

"सर सेम्युअलहोर के समझौते-पूर्ण शब्दों के पीछे इरादा स्पष्ट है कि उत्तरदायी शासन—स्वतंत्रता की तो बात ही मत कीजिए—लड़ाई के बाद भी भारत को न दिया जाय। ब्रिटेन को अनुभव करना चाहिए कि भारत अब क्रमिक सुधार की प्रगति से सन्तुष्ट नहीं होगा। वह पूर्ण स्वराज्य और अपना विधान बनाने का अधिकार चाहता है।"

२८ अक्तूबर, १९३९.

: २४ :

अच्छा भी और बुरा भी

[सर सेम्युअल होर के कामन्स-सभा में दिए गए भाषण पर महात्मा गांधी का निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुआ—सं०]

''सर सेम्युअल होर के कामन्स-सभा में दिये गए हाल के भाषण पर मैं जितना ज्यादा ग़ौर करता हूँ, उतना ही ज्यादा परेशान होता हूँ। वह अच्छा भी है और बुरा भी। लेकिन उसका बुरा भाग इतना बुरा है कि उससे अच्छा भाग भी दूषित हो जाता है। उनका वक्तव्य, कि ब्रिटिश सरकार ने साम्राज्यवाद को छोड़ दिया है, मुश्किल से ही उनके इस कथन से मेल खाता है कि अल्पसंख्यकों से किये गये वायदों की रक्षा होनी चाहिए। जब वह भारत के यूरोपियनों और देशी नरेशों को दूसरे अल्पसख्यकों के साथ छोड़ते हैं, तो उनका पक्ष ही गिर जाता है। अगर यूरोपियन, जिन्होंने भारत में अपना घर नहीं बनाया और जिनकी जड़ें यूरोप में ही हैं, अल्पसंख्यक हैं और उन्हें रक्षा की आवश्यकता है तो ब्रिटिश सैनिकों और नागरिकों को भी, जो बहुत ही अल्पसंख्यक हैं, रक्षा की ज़रूरत है। दूसरे शब्दों में, विजय द्वारा प्राप्त अधिकार सुरक्षित रहने चाहिएँ। यूरोपियन हित ज़बरदस्ती लादे गये हैं, जिनकी रक्षा ब्रिटिश संगीनों द्वारा होती है। स्वतंत्र भारत हरेक यूरोपियन हित की उसके गुणों के अनुसार जाँच करेगा और जो हित राष्ट्रीय हित के संघर्ष में आयगा, वह ठहर नहीं सकेगा। मैंनें संक्षिप्त आक्सफोर्ड डिक्शनरी देखी और उसमें साम्राज्यवाद की मुझे नीचे दी हुई परिभाषा मिली—

''ब्रिटिश राज्य का वहाँ फैलाना, जहाँ कि व्यापार को झंडे की रक्षा की ज़रूरत है।'' अगर यही साम्राज्यवाद है, तो क्या सर सेम्युअल होर का भाषण उसका पूरी तरह समर्थन नहीं करता? भारत की इच्छा उसी साम्राज्यवाद को नष्ट करने की है। क्या देशी नरेशों की भी हालत वैसी ही है जैसी कि यूरोपियनों की है? उनमें बहुत-से, यदि अधिकांश नहीं तो, साम्राज्य की उपज हैं, और ब्रिटिश हितों के लिए ही उन्हें जीवित रक्खा गया है। देशी नरेश किसी प्रकार भी अपनी प्रजा का प्रतिनिधित्व नहीं करते। अगर मैं रियासतों के लोगों की हर सप्ताह अपने पास आई हुई शिकायतों को प्रकाशित करता, तो 'हरिजन' के पृष्ठों को दूना करनें की मुझे ज़रूरत होती। वे बड़ी दुःखभरी कहानियाँ हैं। न देशी नरेशों के लिए वे प्रतिष्ठा-जनक हैं और न उनकी रक्षक, ब्रिटिश सत्ता के लिए। क्या इस ब्रिटिश संरक्षण का अर्थ नग्न साम्राज्यवाद नहीं है? कांग्रेस को कहा गया है कि वह देशी नरेशों को अल्पसंख्यक माने। ब्रिटिश सत्ता तो मालिक है, जिसके बिना देशी नरेश सांस भी नहीं ले सकते! कांग्रेसजनों से मिलने की भी उन्हें आज़ादी नहीं है। उनके साथ

समझौता करने की तो बात ही क्या ! इस संकट में देशी नरेश जो कुछ कर रहे हैं, उसकी मैं शिकायत नहीं करता । अन्यथा करने के लिए तो वे अशक्त हैं ।

''सर सेम्युअल साम्प्रदायिक निर्णय को ब्रिटिश सरकार का एक प्रशंसात्मक काम कहते हैं । मुझे दुःख है कि उन्होंने इसका जिक्र किया । निर्णय के तो, जिसका पोषण गोलमेज़ कांफ्रेंस के समय हुआ था, मुझे बड़े कटु स्मरण हैं । मैं उसे ऐसा ब्रिटिश पराक्रम नहीं मानता कि जिस पर गर्व किया जा सके । मैं मानता हूँ कि कितनी बुरी तरह से पार्टियाँ उससें खुद असफल हुईं । मैं सब पार्टियों के लिए निर्णय को अप्रतिष्ठाजनक मानता हूँ । उसके गुणों को छोड़कर, जिनकी कि अच्छी तरह से जाँच नहीं हुई है, मैं ऐसा कहता हूँ । लेकिन कांग्रेस ने उसे निष्ठा के साथ स्वीकार कर लिया है, क्योंकि स्वर्गीय श्री मैकडानल्ड से मध्यस्थ बनने की प्रार्थना करने वालों में एक मैं भी था ।

''अब उनके 'कांग्रेसी-भारत' और 'गैर कांग्रेसी' भारत में भारत के विभाजन को लीजिए । भारत के नये नक़शे में तो कहीं भी ये दो भारत दिखाई नहीं देते । यह कहीं अच्छा होता, अगर सर सेम्युअल सशस्त्र भारत और निःसशस्त्र भारत की चर्चा करते । कांग्रेस निःशस्त्र करोड़ों का प्रतिनिधित्व करती है, वे चाहे किसी जाति या मत के अनुयायी हों । क्या यह ठीक है कि सशस्त्र भारत की उसके निःशस्त्र भाग के विरुद्ध लड़ाई कराई जाये ? ऐसा समानान्तर उदाहरण इतिहास में मिलना मुश्किल होगा, जिसमें निःशस्त्र लोगों ने निःशस्त्रता को स्वतन्त्रता का मध्यम साधन बनाकर स्वतन्त्रता की प्रेरणा का प्रतिनिधित्व किया हो । सर सेम्युअल ने संसार को बताया है कि भारत की आज़ादी की लड़ाई तबतक नहीं जीती जा सकती, जबतक कि निःशस्त्र भारत सशस्त्र भारत से, जिसमें ब्रिटिश सरकार भी शामिल है, समझौता नहीं करता । इसका अर्थ यह है कि सच्ची जनतंत्रीय भावना को, जिसका प्रतिनिधित्व निःशस्त्र भारत करता है, सशस्त्र भारत और ब्रिटिशसत्ता मिलकर नीचा दिखायें । यहाँ भी मैं कोई शिकायत नहीं करता । सर सेम्युअल अकस्मात् ही ब्रिटिश परम्परा और रूप को नहीं बदल सकते थे । सिर्फ़ मेरा तो खेदजनक कर्तव्य है कि यह प्रगट करूँ कि एक पक्षपातरहित भारतीय ने उनके भाषण को किस प्रकार समझा है । इसमें मुझे सन्देह नहीं कि सर सेम्युअल ने जो कुछ कहा है, वैसा वह मानते भी हैं । हाँ, उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं कहा जो काँग्रेसजनों के, जो स्वतंत्रता के प्यासे हैं, सूखे गलों को शांत कर सके । काँग्रेस को तो पहले से भी अधिक अपने धर्म के अनुसार चलना होगा और उस अहिंसात्मक शक्ति का विकास करना होगा जो सशस्त्र भारत को और साथ ही सशस्त्र ब्रिटेन को निःशस्त्र कर देगी । अगर काँग्रेस ऐसा कर सकी तो विश्व की शान्ति के लिए यह उसकी सबसे बड़ी देन होगी । शांति शस्त्रों के झगड़े से नहीं आती, बल्कि निःशस्त्र राष्ट्रों के संकट-काल में न्यायपूर्वक रहने और न्याय करने से आती है ।''

'हरिजन-सेवक', ४ नवम्बर, १९३९

: २५ :

वायसराय का वक्तव्य

[वायसराय, महात्मा गांधी, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और श्री जिन्ना के सम्मेलन के बाद वायसराय-भवन, नई दिल्ली से वायसराय ने निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया--सं.]

कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों में जो बातचीत चल रही है, उसके फलस्वरूप वे किसी समझौते पर नहीं पहुंचे हैं।

जिस बातचीत की मैंने सलाह दी थी वह हो चुकी है। लेकिन उसका परिणाम बहुत ही निराशाजनक हुआ है। महत्वपूर्ण मसलों पर प्रमुख दलों के बीच आज भी मतभेद मौजूद है। मैं तो बस यही कहूंगा कि मैं इस असफलता से निराश नहीं हुआ हूँ। बड़े दलों के नेताओं और देशी नरेशों के परामर्श से मैं फिर प्रयत्न करने का विचार करता हूँ जिससे समझौते की कोई सम्भावना निकल सके।

जबसे मैं भारत में हूँ, मेरी इच्छा यही रही है कि आपस में समझौता कराऊं। समझौता भारत के लिए आज जितना महत्वपूर्ण है, उतना शायद कभी अनुभव नहीं किया गया। समझौते का अर्थ है कि भारतवासी, चाहे किसी भी जमात के हों, कोई भी उनका धर्म हो, और चाहे वे ब्रिटिश भारत में रहते हों, या देशी रियासतों में, सामान्य योजना में मिलकर काम करें। ऐसा कराने के लिए प्रयत्न करना योग्य है। मैं चाहे अबतक असफल रहा, लेकिन मैं फिर कोशिश करूंगा। मैं भारतवासियों से कहूँगा कि वे मेरी कठिनाइयों को महसूस करें और मेरी सदिच्छा और सहायता देने की इच्छा की क़द्र करें। हम ऐसी समस्या पर विचार कर रहे हैं जो कि संयुक्त कोशिशों को भी असफल कर चुकी हैं। दृष्टिकोण में गहरे मतभेद हैं जिनको हमें सामने रखना है और उन्हें तै करना है। बहुत से मजबूत और गहरी जड़ पकड़े हुए स्वार्थ हैं जिनपर विचार करना होगा और जिनके रुख़ की केवल नाचीज़ समझकर उपेक्षा नहीं की जा सकेगी। अल्पसंख्यक जातियां हैं, जोकि संख्या, ऐतिहासिक महत्व तथा संस्कृति में बहुत बड़ी हैं। ये तमाम पहलू हैं जिनपर पूरा जोर दिया जाना चाहिए। समस्यायें निस्सन्देह उलझी हुई हैं, मगर मैं उनका हल होना असम्भव नहीं मानता हूँ। मेरा यह विश्वास है कि अन्य मानवी समस्याओं की तरह वे भी सद्भावनापूर्ण विचार-विनिमय के आगे घुटने टेक देंगी। मैं देश के और महान राजनैतिक पार्टियों के नेताओं से तथा उनके हलकों से, जिनका कि मैं जानता हूं उन नेताओं में पूरा विश्वास है और नेता जिनका बहुत योग्यता के साथ नेतृत्व करते हैं, कहूंगा कि वे मुझे सहायता दें जिसकी कि मुझे बहुत आवश्यकता है, यदि हमारी कठिनाइयों से पार होने और एक ऐसे परिणाम पर पहुंचने की, जैसा कि मेरा विश्वास है कि हम चाहते हैं, कोई आशा बाकी है।

: २६ :

वायसराय का पत्र

[वायसराय द्वारा महात्मा गांधी, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद और मुस्लिम-लीग के अध्यक्ष श्री जिन्ना के नाम २ नवम्बर १९३९ को वायसराय-भवन से निम्नलिखित पत्र भेजा गया—सं०]

"(१) आपको याद होगा कि कलकी वार्तालाप के दौरान में मैं उस तजवीज को जो कि मैंने आपके तथा बैठक में उपस्थित अन्य महानुभावों के सामने रक्खी थी, असली रूपमें आपके आगे पेश करने के लिए रज़ामन्द हुआ था और इस बातपर जोर दिया था कि मैंने सहायता करने की हार्दिक इच्छा के साथ जिसमें कि सम्राट् की सरकार भी रज़ामन्द है, ऐसा किया था।

"(२) तजवीज, जिसपर कि मैंने आपको तथा अन्य उपस्थित महानुभावों को कांग्रेस और मुस्लिम-लीग के नेताओं की हैसियत से विचार करने के लिए निमन्त्रित किया था, यह थी कि केन्द्र में मेल के साथ काम करना जरूरी समझते हुए, आप खुद अपनी कान्फ्रेन्स करके इस बात को मद्देनज़र रखते हुए विचार-विनिमय करें कि आया प्रांतीय क्षेत्र में आप अपने बीच किसी समझौते का आधार निकाल सकते हैं या नहीं, ताकि उसके फलस्वरूप आप मेरे सामने ऐसे प्रस्ताव पेश कर सकें जिनसे कि आपकी दोनों संस्थाओं के प्रतिनिधि केन्द्रीय सरकार में मेरी कार्यकारिणी के सदस्यों की हैसियत से सहयोग देना शुरू कर सकें। मैंने यह भी कहा था कि मेरी राय में इसके लिए प्रान्तों में विद्यमान तमाम मतभेदों की प्रत्येक बात को ही तय करना ज़रूरी नहीं है। जिस चीज़ की आवश्यकता है वह यह कि प्रान्तों के मामले में कम-से-कम इतना समझौता हो जाये कि जिसमें मेरे मुलाकाती और वे संस्थायें जिनका कि वे प्रतिनिधित्व करते हैं, ऐसी योजना पेश कर सकें, जिसपर कि केन्द्र के लिए विचार किया जा सके।

"(३) मैंने केन्द्र में किसी भी प्रबन्ध के सम्बन्ध में कहा था—

"पहिले, तो यह कि किसी की राय में भी अन्य प्रमुख पार्टियों के एक या अधिक प्रतिनिधियों को शामिल करना ठीक खयाल किया जा सकता है और यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर कि मैं विस्तार के साथ विचार करते समय आपकी सलाह की कद्र करूँगा।

"दूसरे, केन्द्र के लिए जिस योजना पर विचार करने के लिए मैंने आपको निमंत्रित किया था, वह खासतौर से केवल युद्ध के समय के लिए ही होगी और युद्ध के बाद शासन-सुधारों के अधिक विस्तृत प्रश्न से इसका कोई सम्बन्ध नहीं होगा। मैंने यह भी उल्लेख किया कि उस आखिरी बात पर मेरी घोषणा में ब्रिटिश सरकार की

स्थिति साफ़ कर दी गई थी । मैं घोषणा के उन अंशों की एक प्रति भी जिनकी कल की बैठक में चर्चा की गई थी, इसके साथ ही जोड़े देता हूँ ।

"तीसरे, एक राजनैतिक पार्टी के सदस्य की हैसियत से मेरी कार्य-कारिणी में नियुक्त किये जानेवाले किसी भी व्यक्ति के अधिकार और कर्त्तव्य वही होंगे जोकि मेरी कार्यकारिणी के वर्तमान सदस्यों के हैं ।

"चौथे, यह व्यवस्था वर्तमान क़ानून की आम-योजना के अन्तर्गत ही होगी । निस्सन्देह यह लड़ाई के जारी रहने तक केवल अस्थाई प्रबन्ध ही होगा । मैंने वही चीज़ रक्खी है जिसकी कि आवश्यकता है और वह यह कि हम मिलकर कोई भी क्रियात्मक योजना तैयार करलें और उसको जहाँतक हो सके जल्दी-से-जल्दी अमल में लावें, उस समय तक जबकि तमाम वैधानिक स्थिति पर अच्छी तरह विचार किया जायगा जैसा कि सम्राट की सरकार युद्ध ख़तम होने के बाद करने की इच्छा प्रकट कर चुकी है ।

"(४) मेरे ख़याल में उपरोक्त से स्थिति साफ़ हो गई है । अन्त में मैं फिर यह दोहराता हूँ जैसा कि मैंने कल कहा, मैं हर समय आपकी इच्छा पर हूँ या अन्य महानुभावों की भी इच्छा पर, जोकि हमारी बैठक में उपस्थित थे और इन तमाम महत्त्व पूर्ण प्रश्नों पर फ़ैसला करने के लिए जो कुछ भी सहायता मैं दे सकता हूँ, देने के लिए तैयार हूँ । मुझे पूरा विश्वास है और जैसा कि मैंने कल भी कहा था कि जो सुझाव मैंने आपके सामने पेश किये हैं, जोकि मुकम्मिल समझौते पर पहुँचने के लिए सम्राट की सरकार की हार्दिकइच्छा का पूर्ण प्रमाण दे रहे हैं, उनपर आप पूर्ण सहानुभूति के साथ विचार करेंगे ।

: २७ :

कांग्रेस का उत्तर

[राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने ३ नवम्बर को बिड़ला भवन, नई दिल्ली से वायसराय के पत्र का जो उत्तर भेजा, उसका पूरा विवरण इस प्रकार है—सं०]

"मैं आपके २ नवम्बर वाले पत्र के लिए आपको धन्यवाद देता हूँ, जिसमें उस योजना का असली रूप अंकित है जो कि आपने १ नम्बर को जबकि हम आपसे मिले थे, हमारे सामने रक्खी थी । मेरे सहयोगियों तथा मैंने इस पर ध्यानपूर्वक विचार किया है । हमने श्री एम० ए० जिन्ना के साथ हुई बातचीत का भी लाभ उठाया है । लेकिन हम उस उत्तर को बदलने में अपने को असमर्थ पाते हैं, जो कि हमने मुलाकात के दौरान में दिया था ।

"आरम्भ में मैं यह बतलाना पसन्द करूंगा कि मुलाकात के अवसर पर महात्मा गान्धी तथा मेरे सामने कांग्रेस द्वारा उठाये गये युद्ध के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण-विषयक मुख्य व नैतिक मुद्दे के बारे में कोई बातचीत नहीं आई जिसके अभाव में किसी भी सहायक प्रस्ताव पर कांग्रेस द्वारा विचार करना असम्भव है ।

"वर्तमान संकट यूरोप में युद्ध छिड़ जाने और ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत को उसकी प्रजा की राय लिये बिना एक 'युद्ध में शामिल' देश घोषित कर दिये जाने के कारण पैदा हुआ है। यह संकट पूर्णतः राजनैतिक है और भारत के साम्प्रदायिक मामले से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है और यह ब्रिटिश सरकार के युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों तथा भारत की स्थिति के सम्बन्ध में आवश्यक प्रश्न उत्पन्न कर देता है। कांग्रेस-कार्य-समिति ने, जैसा कि आपको विदित है, १४ सितम्बर १९३९ को एक लम्बा वक्तव्य जारी किया था जिसमें कांग्रेस द्वारा ब्रिटिश सरकार को इन युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों का खुलासा करने के लिए आमन्त्रित किया गया और खासतौर से पूछा गया कि इनको भारत पर कैसे लागू किया जायगा तथा फिलहाल इन पर कैसे अमल किया जायगा है। वक्तव्य में यह भी कहा गया था कि भारतीय प्रजा को एक राष्ट्रीय पंचायत द्वारा बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के अपना शासन-विधान बनाने तथा अपनी बनाई नीति का संचालन करने के लिए 'आत्मनिर्णय' का अधिकार होना चाहिए। १० अक्तूबर १९३९ ई० को कांग्रेस-महासमिति ने भी इस वक्तव्य को स्वीकार कर लिया और कहा कि ब्रिटिश सरकार को अपनी घोषणा में भारत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर देना चाहिए तथा उस पर अभी से जहांतक हो सके अमल शुरू होजाना चाहिए। महासमिति ने यह भी कहा था कि भारतीय स्वतन्त्रता प्रजातन्त्र व एकता पर आश्रित होनी चाहिए और समस्त अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा होनी चाहिए।

"इसके बाद आपके वक्तव्य में ब्रिटिश सरकार की नीति घोषित कर दी गई, जिसके उद्धरण आपने मेरे पास भेज कर बड़ी कृपा की है। इस वक्तव्य पर कांग्रेस-कार्यसमिति द्वारा तुरन्त विचार किया गया और समिति ने राय दी कि वह दुर्भाग्यपूर्ण तथा नितान्त असन्तोषजनक है। इसके परिणामस्वरूप समिति यह घोषित करने, कि वह ग्रेटन-ब्रिटेन को कोई सहायता नहीं दे सकती और काँग्रेसी मन्त्रिमण्डलों को इस्तीफा दे देने का आदेश देने के लिए वह बाध्य हो गई।

"यह बात नोट करने योग्य है कि आपकी घोषणा को कांग्रेस के बाहर भी बहुसंख्यक भारतीय प्रजा द्वारा अस्वीकार किया गया है।

"इसके उपरान्त पार्लमेण्ट में ब्रिटिश सरकार की ओर से जो वक्तव्य दिये गए हैं उनसे भी आपके द्वारा घोषित की गई नीति में कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ है, और जैसा कि आपनें ठीक निर्देश किया है, यह नीति अब भी आपके द्वारा भेजे गये उद्धरणों से ही शासित की जा रही है। वर्त्तमान अवस्थाओं में हमारे लिए इस नीति को स्वीकार करना अथवा भावी सहयोग की किसी बात पर विचार करना तबतक असम्भव है जबतक कि कांग्रेस द्वारा सुझाई गई लाइनों पर ब्रिटिश सरकार की नीति स्पष्ट नहीं की जाती।

"हमें यह जानकर बहुत दुःख हुआ है कि इस मामले में साम्प्रदायिक प्रश्न को खींच लिया गया ह। इसने मुख्य मुद्दे को अंधेरे में डाल दिया है। कांग्रेस की ओर

से यह बार-बार दोहराया गया है कि हम साम्प्रदायिक विवाद के सब नुक्तों को आपसी बातचीत से हल करने की हार्दिक इच्छा रखते हैं और हम इस उद्देश्य-सिद्धि के लिए अपने प्रयत्नों को जारी रखने का इरादा रखते हैं। लेकिन मैं बतला देना चाहता हूं कि यह प्रश्न ऊपर सुझाई गई भारतीय स्वतन्त्रता की घोषणा करने में किसी तरह भी रुकावट नहीं है। इस प्रकार की घोषणा समस्त भारत के लिए है, न कि किसी जाति-विशेष के लिए; और राष्ट्रीय-पंचायत जोकि भारत का विधान तैयार करेगी, मताधिकार के विस्तृत आधार पर तथा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के बारे में एक समझौता करके बनाई जायगी। इस बात पर हम सहमत हैं कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों की पूर्ण रक्षा होनी चाहिए और यह रक्षा सम्बद्ध पार्टियों में एक समझौते के द्वारा हो। ब्रिटिश सरकार नें, हमारी राय में, इस प्रश्न का हल मुश्किल कर दिया है। कांग्रेस की इस घोषणा से ब्रिटिश सरकार की एतद्विषयक असली चिंता दूर हो जानी चाहिए कि कांग्रेस ऐसे विधान का ख़याल भी नहीं करती जिसमें कि असली अल्पसंख्यक जातियों को उनकी इच्छा के मुताबिक संरक्षण प्राप्त न हो।

"हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस मामले पर आगे कोई विचार-विनिमय करने के लिए उपरोक्त प्रकार की स्पष्ट घोषणा एक आवश्यक प्रारम्भिक वस्तु है। मैं यह भी कहना पसन्द करूंगा कि यूरोपियन युद्ध की ताजी घटनाओं ने युद्ध के उद्देश्यों का साफ स्पष्टीकरण और भी जरूरी कर दिया है। यदि सरकार की ओर से कोई संतोषजनक घोषणा की जायगी, तो आप द्वारा रक्खी गई योजना पर बहस करना उपयुक्त व लाभदायक होगा और हम प्रसन्नतापूर्वक आपके साथ इस पर विचार-विनिमय करेंगे।

"यह बतलाना शायद अनावश्यक है कि गांधीजी इस पत्र से पूर्णतः सहमत हैं।"

: २८ :

लार्ड ज़ेटलैण्ड का भाषण

[लार्ड-सभा में ७ नवम्बर १९३९ को लार्ड ज़ेटलैण्ड ने निम्नलिखित भाषण दिया—सं०]

"पिछले सप्ताह गवर्नर-जनरल ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौता कराने का प्रयत्न किया था और वह विफल हुआ, इसके लिए गवर्नर-जनरल द्वारा प्रकाशित खेद में सम्राट की सरकार पूर्णरूप से शरीक है। गवर्नर-जनरल ने पिछली बार जब विभिन्न पार्टियों और जातियों के नेताओं और प्रतिनिधियों से धीरज के साथ मुलाकात की थी तब उनको विश्वास हो गया था कि जबतक काँग्रेसी प्रांतों के संबंध

में विद्यमान मुसलमानों की शिकायतें दूर नहीं होतीं, तबतक युद्ध चलाने के उद्देश्य से केन्द्रीय गवर्नमेण्ट से भारत को शरीक करना सम्भव नहीं है।

"प्रकाशित वक्तव्यों से स्पष्ट है कि कांग्रेस ने वायसराय द्वारा पेश की गई योजना पर विचार करने तक से इनकार कर दिया है। जबतक इन दो बातों की सम्राट की सरकार घोषणा नहीं करेगी, तबतक उन पर वह विचार नहीं कर सकती। वे दो बातें इस प्रकार हैं :—

"१. भारत स्वाधीन राष्ट्र है, इसकी घोषणा की जाय।

"२. भारत का भावी विधान बिना बाह्य हस्तक्षेप के व्यापक बालिग मताधिकार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों की बनी राष्ट्रीय-पंचायत द्वारा साम्प्रदायिक एकता के आधार पर बनाया जायगा।

"अल्पसंख्यकों की समस्या के सम्बन्ध में कांग्रेस का रवैया पहले जैसा है। उसका कहना है कि इन दो बातों से धार्मिक या जातीय अल्पसंख्यक समस्या का कोई संबंध नहीं है। उसका यह भी कहना है कि अल्पसंख्यकों की समस्या भारतीयों को अपना विधान बनाने का अधिकार देने से स्वतः हल हो जायगी, क्योंकि उनकी सहमति से उसको भावी विधान में संरक्षण दिया जायगा।

"सम्राट की सरकार यह मानने में असमर्थ है। भारत से ब्रिटेन का चिरकाल से सम्बन्ध चला आ रहा है। उसको देखते हुए यह सम्भव नहीं है कि भारत के भविष्य का विधान बनाने के समय हम कोई दिलचस्पी न लें और हम भारत के प्रति चिरकाल से चले आ रहे अपने उत्तरदायित्व को छोड़ दें। वायसराय ने इससे पहले जो भारत की विभिन्न पार्टियों और दलों के लोगों से मुलाकात की थीं उसने असंदिग्ध रूप में यह सिद्ध कर दिया है कि यदि हम इस समय अपने इस उत्तरदायित्व और अपनी जिम्मेदारी को छोड़ देंगे तो अधिकांश भारतीय जनता को यह स्वीकार न होगा, और न वह इसको पसन्द करेगी।

"इसका यह अर्थ नहीं है कि हम भारत के प्रति की गई अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये हैं या हमने उसकी उपेक्षा कर दी है। ब्रिटिश कामनवेल्थ में भारत को अपना उचित स्थान पाने में, जिसके लिए हमने प्रतिज्ञा की है, सहायता देने का हमारा संकल्प पहले जैसा बना है और कमजोर नहीं हुआ है। पिछले विवाद के कारण भारत में कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया है। मैं उन सन्देहों और शंकाओं को दूर कर देना चाहता हूँ। मालूम हुआ है कि १९२६ का डुमीनियन स्टेटस कहने से भारत में कुछ भ्रम होगया है। खयाल किया जाता है कि १९२६ के डुमीनियन स्टेटस द्वारा डुमीनियनों को जो स्थिति प्रदान की गई थी, और जिसकी पहिली बार साम्राज्य परिषद (१९२६) में मि० बालफोर ने घोषणा की थी, उसकी अपेक्षा वेस्ट मिन्स्टर क़ानून १९३१ द्वारा डुमीनियनों को मिली स्थिति और हैसियत अधिक बड़ी है। मगर ऐसी बात नहीं है, आप यकीन मानिए।

"सर सेम्युअल होर ने आम-सभा में बोलते हुए डुमीनियन स्टेटस १९२६ कहा

है, क्योंकि साम्राज्य-परिषद ने उसी साल पहली बार डुमीनियनों की स्थिति की परिभाषा की थी और उनकी बदली स्थिति को लेखबद्ध किया था। वेस्ट मिन्स्टर क़ानून १९३१ द्वारा केवल उनको कानूनी रूप दिया गया है और उनकी बदली स्थिति और हैसियत को स्वीकार किया गया है।

"गवर्नर-जनरल ने केन्द्रीय सरकार में रानैजतिक पार्टियों को शामिल करने की जो योजना बनाई है यदि वह अमलरूप में आती तो भारत के मार्ग की बहुत सी कठिनाइयाँ दूर हो जातीं। वायसराय अपना प्रयत्न विफल होने पर भी हताश नहीं हुए हैं और उनको आशा है कि राजनैतिक पार्टियाँ उनके प्रस्तावों पर पुर्नविचार करेंगी। वायसराय ने उनको पारस्परिक समझौते पर पहुँचने में अपनी सहायता देनें का वचन दिया है और सरकार वायसराय की नीति से सहमत है।

"बंगाल, पंजाब, और सिन्ध में जहाँ कांग्रेस का बहुमत नहीं है, इस समय मन्त्रिमण्डल विद्यमान हैं। शेष आठ प्रान्तों में से पाँच प्रांतों में कांग्रेसी मन्त्रि मण्डलों ने स्तीफे दे दिये हैं और शेष तीन में भी निकट भविष्य में स्तीफा दिये जानें की सम्भावना है। एक प्रान्त—आसाम—को छोड़कर अन्य प्रांन्तों में उनकी जगह दूसरा मन्त्रि-मण्डल बनना सम्भव नहीं है।

"पांच प्रान्तों में गवर्नर ने प्रान्त का सारा शासन-भार अपनें हाथ में ले लिया है, क्योंकि कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों की जगह धारा-सभा के सदस्यों का बहुमत सम्पादन करने में समर्थ दूसरा मन्त्रिमण्डल बनाना सम्भव नहीं था। अतः गवर्नरों ने एक्ट के अनुसार घोषणा करके सब अधिकार अपनें हाथ में ले लिए हैं। इण्डिया एक्ट की ९३ वीं धारा में कहा गया है, कि जब इस विधान की धाराओं के अनुसार सरकार चलाना सम्भव न हो, तो इसका आश्रय लिया जाय। इसके अनुसार शासन की मशीनरी और सम्राट की सरकार को चालू रखने के लिए यह व्यवस्था की गई है।

"यदि कांग्रेसी और उसके समर्थकों ने विरोध नहीं किया तो गवर्नर अपने सलाहकारों की सहायता से कुशलता के साथ प्रान्तों का शासन चला सकेंगे।

"इस नई व्यवस्था से एक मौलिक अन्तर हो गया है। सलाहकारों की सलाह से किये गए कार्यों के लिए गवर्नर अब इस पार्लमेंट के प्रति जिम्मेदार होंगे, पहले के समान मन्त्रियों की सलाह से किये गए कार्यों के लिए प्रान्तीय-धारा-सभाओं के प्रति नहीं।

"हमें इस बात का गहरा खेद है कि कांग्रेसी मन्त्रियों ने, जो कि बड़े उत्साह और साहस से कार्य कर रहे थे और शासन-प्रबन्ध में आयीं समस्याओं को अपनी सारी शक्ति से हल कर रहे थे, अपना कार्य जारी नहीं रक्खा। मगर हमें आशा है कांग्रेस अपना सहयोग देर तक नहीं हटाये रहेगी और जबतक इस आशा के लिए एक भी कारण मौजूद है, हम यह आशा बराबर बनाये रहेंगे। जब भविष्य में धारा-सभा के सदस्यों का विश्वास सम्पादन करनेंवाला मन्त्रिमण्डल बनना सम्भव होगा, आप विश्वास मानिए, गवर्नर अपनें इन अधिकारों का उसी समय परित्याग कर देंगे।"

: २६ :

वायसराय का संदेश

[दिल्ली में कांग्रेस के नेताओं तथा मुस्लिम लीग के नेता से बातचीत करने के कुछ समय बाद वायसराय ने निम्नलिखित संदेश ब्राडकास्ट किया—सं०]

"मुझे यह बड़े दुःख के साथ घोषित करना पड़ रहा है कि मेरे अनुरोध पर कांग्रेस व मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों में समझौते की जो बातचीत आरम्भ हुई थी उसका अभी तक इच्छित परिणाम नहीं निकला है। देश को उस योजना की जानकारी प्राप्त करने का हक है, जिस पर कि मैंने भारत के दोनों महान राजनैतिक दलों के नेताओं को विचार करने के लिए बुलाया था। इस सम्बन्ध में हुआ समस्त पत्र-व्यवहार में कल प्रकाशित कर दूंगा। यहाँ मैं सिर्फ़ यह बतला देना चाहता हूँ कि इस वार्त्तालाप का उद्देश्य दोनों राजनतिक दलों के नेताओं को मिलाना और उनके द्वारा प्रान्तीय मतभेदों को दूर कर केन्द्र में काम करने के लिए समझौता कराना था। मेरी १८ अक्तूबर वाली घोषणा में एक परामर्श-दात्री समिति का उल्लेख है। लेकिन इस समिति में जबतक सदस्यों का मतैक्य नहीं होगा, तबतक यह ठीक काम नहीं कर सकेगी। इसी कारण दोनों दलों के नेताओं को परस्पर बातचीत द्वारा मतभेदों को दूर करने के लिए बुलाया गया। प्रान्तों में सम्राट की सरकार द्वारा जो अहतियाती कार्रवाइयां की गई हैं वे आवश्यक समझ कर की गई हैं, न कि बतौर एक दण्ड-व्यवस्था के। उनके अमल के बारे में मेरी अपनी भावना जो है, उसे फतहपुर सीकरी के फाटक पर अंकित एक अरबी कविता भली प्रकार व्यक्त करती है। उस कविता का सार यह है—

'जीवन एक पुल है, ऐसा पुल जिसे आप कर सकते हैं।
'आप उस पर अपना घर नहीं बना सकते।'

"विस्तृत क्षेत्र में भी मैं इस निराशा को ऐसी नहीं समझता कि अन्त तक चले। अर्थात् मैं उन प्रयत्नों को, जो कि दोनों पक्षों में आपसी समझौता कराने के लिए कर रहा हूँ, नहीं छोड़ सकता। इन आपसी मतभेदों को आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। इन्हें समझौते द्वारा हल करना पड़ेगा। अब मैं और ज्यादा नहीं कहूँगा। लेकिन मैं भारतीय प्रजा से सद्भावना व धैर्य रखने की प्रार्थना करूँगा। कठिनाइयां महान् हैं और कितनी महान् हैं, पिछले छः सप्ताहों की कार्रवाइयों ने यह बतला दिया है। परन्तु मैं इन कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न जारी रक्खूंगा। चाहे मैं इस कार्य में सफल होऊँ या असफल।"

: ३० :

महात्मा गांधी का वक्तव्य

[वायसराय की घोषणा तथा ब्राडकास्ट पर महात्मा गांधी ने निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया—सं०]

वायसराय के ब्राडकास्ट और उनमें और श्री राजेन्द्रप्रसाद और जिन्ना साहब के बीच हुए पत्र-व्यवहार के ऊपर, जो कि वायसराय द्वारा प्रकाशित किया गया है, की गई परिचयात्मक टिप्पणी को मैंने सम्मान के साथ पढ़ा है। मैं वायसराय की पराजय न स्वीकार करने और उस समस्या को, जो कि सुलझती नहीं प्रतीत होती, सुलझाने के दृढ़ संकल्प का स्वागत करता हूँ। हल निकालने के बारे में मैं वायसराय की चिन्ता में पूर्णतः भागीदार हूं।

इन दो घोषणाओं पर कांग्रेस में होने वाली प्रतिक्रिया को देखनें की प्रतीक्षा किये बग़ैर और उभयपक्ष को विशुद्धभाव से सहायता पहुंचाने के भाव से मैं सलाह देना चाहता हूँ कि उस समय तक कोई हल सम्भव नहीं है जबतक भारत के सम्बन्ध में स्वीकारयोग्य युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा नहीं की जाती। अबतक यहाँ या ब्रिटेन में जो घोषणायें की गई हैं वे पुराने ढंग की हैं और स्वाधीनता-प्रिय भारत ने उनपर संदेह किया है और उनकी निन्दा की है। अगर साम्राज्यवाद खत्म हो गया है तो भूत से स्पष्टरूप से सम्बन्ध-विच्छेद होना चाहिए। नवीन युग के उपयुक्त भाषा का प्रयोग होना चाहिए। यदि इस आधारभूत सत्य को स्वीकार करने का अभी तक समय नहीं आया है तो मैं निवेदन करूँगा कि हल को ढूढ़ने के लिए प्रयत्न स्थगित रक्खे जाँय।

इस सम्बन्ध में मैं ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को स्मरण कराना चाहता हूँ कि इस समय आवश्यकता इस बात की है कि भारत की इच्छाओं का खयाल किए बग़ैर भारतीय नीति के सम्बन्ध में ब्रिटेन अपनें इरादों की घोषणा कर दे। एक दास रखने वाला, जिसने कि दासता को नष्ट करनें का निश्चय कर लिया हो, अपने दासों से इस बात में सलाह नहीं करता कि वे आज़ादी चाहते हैं या नहीं।

एक बार दासता के बन्धनों से क्रमशः या सीढ़ी-दर-सीढ़ी नहीं, बल्कि एकदम भारत के मुक्त होने और स्वतन्त्र हो जानें की घोषणा कर देनें के बाद दरम्यानी हल ढूढ़ना आसान होगा और अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने का प्रश्न सरल हो जायगा। आंखमिचौनी का खेल तब खतम हो जायगा। स्वतन्त्रता का ऐसा कोई भी चार्टर (अधिकार-पत्र) जो बहु-संख्यकों और अल्पसंख्यकों को एकसमान स्वाधीनता प्रदान नहीं करता, देखने लायक़ भी न होगा। विधान बनानें में अल्पसंख्यक पूर्णरूप से हिस्सेदार होंगे। ऐसा कैसे हो सकता है, यह उन प्रतिनिधियों की बुद्धिमत्ता पर निर्भर होगा, जिनको विधान बनाने का पवित्र कर्त्तव्य सौंपा जायगा।

ब्रिटेन ने अबतक अपनी ताक़त को अल्पसंख्यकों को तथाकथित बहु-संख्यकों के विरुद्ध खड़ा करके बनाये रक्खा है—साम्राज्यवाद की किसी भी प्रणाली में यह अनिवार्य है—और इस प्रकार से सम्मत हल होना असम्भव बना दिया है। अल्प-संख्यकों को संरक्षण देने की जिम्मेदारी उन दलों पर ही डाल देनी चाहिए। जबतक ब्रिटेन उस बोझ को वहन करने का अपना मिशन समझता है, तबतक वह भारत को अपने अधीन बनाये रखने की जरूरत समझता रहेगा। और मुक्ति के लिए देशभक्त, अगर मैं उनका पथ-प्रदर्शन करूंगा, तो वे अहिंसात्मक रीति से लड़ेंगे और यदि मैं अपने प्रयत्न में विफल हुआ तो वे हिंसात्मक युद्ध करेंगे। मैंने आशा प्रकट की है और अब भी आशा करता हूं कि भगवान का युद्ध का अभिशाप आशीर्वाद के रूप में बदल जायगा और ब्रिटेन यह अनुभव करेगा कि अपने कार्य के औचित्य को सिद्ध करने और इस युद्ध को जल्दी समाप्त करने के लिए भारत जैसे प्राचीन और महान देश को अपने शासन के बोझ से मुक्त करना आवश्यक है।

वायसराय की सचाई में विश्वास करते हुए, जैसा कि मैं करता हूँ, मैं अपने सहयोगी कार्यकर्त्ताओं से अनुरोध करूंगा कि वे धीरज न खोयें। सविनय-क़ानून-भंग उस समय तक शुरू नहीं हो सकता जबतक—

(१) वायसराय समझौते का मार्ग खोज रहे हैं,

(२) मुस्लिम-लीग मार्ग को रोके हुए हैं, और

(३) कांग्रेसजनों में अनुशासन नहीं है और एकता का भी अभाव है।

मेरी दूसरी शर्त से मुस्लिम-मित्रों को नाराज नहीं होना चाहिए। जबतक मुस्लिम-लीग से किसी प्रकार की व्यावहारिक व्यवस्था नहीं होती तवतक सविनय क़ानून-भंग लीग के प्रतिरोध में परणित हो सकता है। कोई भी कांग्रेसजन इसमें सहायक नहीं हो सकता। मैं देखता हूँ, 'हरिजन' में मेरे लिखे नोट से जिन्ना साहब को चोट लगी है। मुझे इसके लिए दुःख है, मगर मैं इस समय अपने बचाव में कुछ नहीं कहूँगा। मैं उनमें और पंडित जवाहरलाल नेहरू में चल रही चर्चा को जिसके विषय में मैं आशा करता हूँ कि वह शीघ्र फिर शुरू होगी, बाधा नहीं डालना चाहता और प्रार्थना करता हूं कि यह साम्प्रदायिक शान्ति की ओर ले जावे।

उपर्युक्त वक्तव्य देने के बाद मैंने लार्ड-सभा में भारत मन्त्री द्वारा दिया गया वक्तव्य देखा है। इससे मुख्य स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है।

८ नवम्बर, १९३९.

: ३१ :

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का वक्तव्य

[वायसराय के वक्तव्य के जवाब में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने पटना से निम्नलिखित वक्तव्य दिया—सं०]

मुख्य प्रश्न साम्प्रदायिक समस्या नहीं है, बल्कि भावी भारत की वैधानिक स्थिति और ब्रिटेन की लड़ाई लड़ने के उद्देश्यों की घोषणा है। जबतक इनका संतोषजनक उत्तर नहीं दिया जाता; तबतक कांग्रेस किसी भी प्रकार से ब्रिटिश नीति के साथ सहयोग नहीं दे सकती।

हम अपने विचार पूर्णरूप से स्पष्ट कर चुके हैं और हम सर सेम्युअल होर द्वारा बताई स्थिति स्वीकार नहीं करेंगे। भारत की वैधानिक स्थिति और ब्रिटेन के युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा हमारे निकट मुख्य प्रश्न हैं, अन्य सब प्रश्न गौण हैं। वे मुख्य प्रश्नों को ढक नहीं सकते, न उनसे अधिक महत्वपूर्ण ही वे बन सकते हैं।

रचनात्मक कार्य में कांग्रेस को अपनी शक्ति केन्द्रित करनी होगी जिसका मुख्य कार्य हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करना होगा। वायसराय से परामर्श का फल कुछ भी निकले, इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए हम निरन्तर प्रयत्न करते रहेंगे। साम्प्रदायिक प्रश्न का फैसला हो जाने से कांग्रेस का बल नहीं बढ़ जायगा। यदि हम इस प्रश्न को हल करलें तो हमारी मांग का प्रतिरोध न किया जा सकेगा। यदि हमारी संयुक्त मांग भी ब्रिटिश-सरकार द्वारा स्वीकार न की गई, तो हम पूर्ण विश्वास से सविनय-भंग आन्दोलन शुरू कर सकेंगे, क्योंकि तब मुसलमान हमारा विरोध नहीं करेंगे।

…कुछ वामपक्षियों ने स्वतन्त्ररूप से कार्य करने की धमकी महासमिति में दी थी; मगर इस प्रकार का आन्दोलन बहुत बड़ा न होगा।

कांग्रेस अविलम्ब लड़ाई नहीं शुरू करने वाली है। इस समय हमारा पहला काम कांग्रेस को मजबूत बनाना और जब कभी लड़ाई हो उसके लिए तैयार होना है।…

६ नवम्बर, १९३९.

: ३२ :

पण्डित जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य

[लखनऊ से पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने वायसराय के वक्तव्य पर निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया——सं०]

वायसराय के वक्तव्य से मैं चकित रह गया हूं, क्योंकि जो असर दिल्ली में मुझे पर इससे सम्बन्धित पार्टियों के सम्पर्क से पड़ा था, इस वक्तव्य से उसके सर्वथा भिन्न

असर पड़ा है। इस वक्तव्य से मालूम होता है कि हमारे सामने विचारणीय प्रश्न साम्प्रदायिक है। वायसराय कहते हैं कि मुख्य राजनैतिक पार्टियों के प्रतिनिधियों में मौलिक सिद्धान्तों में आज सर्वथा मतभेद विद्यमान है। मेरे विचार से यह तो स्थिति का एकदम गलत वर्णन है और मैं नहीं जानता कि इस प्रकार का मौलिक मतभेद कोई है भी। मगर ब्रिटेन और कांग्रेस के बीच आधारभूत मतभेद है। और इसी कारण वायसराय के प्रस्तावों पर हम विचार नहीं कर सकते। हमारे सामने प्रश्न राजनैतिक है और इसी पर हम सबने विचार किया है। मेरे और मि० जिन्ना के बीच यह तय हुआ है कि जल्दी-से-जल्दी जब सुविधा हो तब साम्प्रदायिक सवाल पर पूर्णरूप से विचार किया जाय। इसका वायसराय के प्रस्तावों पर उस समय तक कोई असर नहीं होता जबतक कि राजनतिक कठिनाई दूर नहीं हो जाती। इसलिए इस सम्बन्ध में उसपर कोई विचार नहीं किया गया है।

राजनैतिक मामले पर संकट उत्पन्न हुआ है, याने यूरोपियन युद्ध और भारत को 'युद्ध में शामिल' देश घोषित करने के कारण। कांग्रेस-कार्यसमिति ने युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा करने और भारत के साथ वह किस प्रकार लागू होते हैं, यह बताने की मांग की थी। फलतः ब्रिटिश सरकार ने वायसराय के जरिए एक घोषणा की और वह सर्वथा असन्तोषजनक समझी गई। इसके फलस्वरूप कांग्रेस ने विचार किया कि वह युद्ध से अपने को सम्बन्धित नहीं रख सकती और उसने कांग्रेसी-मंत्रि-मण्डलों को स्तीफा देने के लिए कहा।

स्तीफे दिए गए और कुछ के स्वीकार भी हो चुके हैं। इन सब का साम्प्रदायिक स्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

वायसराय का अगला परामर्श है कि कांग्रेस और मुस्लिम-लीग को पहले प्रान्तीय क्षेत्र में समझौता कर लेना चाहिए और उसके बाद केन्द्र से सम्बन्धित प्रस्तावों पर विचार किया जायगा। यह सलाह अन्य किसी समय के लिए चाहे वाञ्छनीय हो, मगर मौजूदा हालतों पर लागू नहीं होती, क्योंकि हम स्वेच्छा से प्रान्तीय क्षेत्र से ब्रिटिश सरकार के साथ महत्वपूर्ण नीति में मतभेद होने के कारण हट गए हैं। प्रान्तीय क्षेत्र से हमारा हटना साम्प्रदायिक प्रश्न के कारण नहीं है।

इसलिए यह विस्मयजनक है कि वायसराय बुनियादी बात को भूल जाते हैं या उसकी उपेक्षा कर देते हैं और मामूली परिवर्तनों के बदले ब्रिटेन के लिए हमारा सहयोग लेते हैं। जैसा कि राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने अपने पत्र में लिखा है कि महात्मा गांधी और वह, उन दोनों ने मुलाकात में कांग्रेस द्वारा उठाए गए युद्ध के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण-सम्बन्धी मुख्य और नैतिक प्रश्न का जिक्र नहीं पाया, उसके अभाव में कांग्रेस के लिए और गौण प्रस्तावों पर विचार करना नामुमकिन है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि इस स्पष्टीकरण का साम्प्रदायिक समस्या से कोई सम्बन्ध नहीं है और न जैसा कि राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने अपनी मुलाकात और वायसराय को लिखे अपने पत्र में स्पष्ट किया ह, इसका राष्ट्रीयपंचायत के प्रस्ताव से

ही कोई सम्बन्ध है। यह किसी भी साम्प्रदायिक आपत्ति को दूर करने में समर्थ है।

क्या वायसराय का ख़याल है कि मि० जिन्ना या मुस्लिम लीग इस प्रकार के स्पष्टीकरण या भारत को स्वतन्त्र देश घोषित करने के विरुद्ध हैं ? अगर ऐसा है, तो मुझे भय है कि वे बहुत भूल में हैं। यह जानकर मुझे आश्चर्यजनक प्रसन्नता हुई कि जहां तक लक्ष्य का सम्बन्ध है, मैं और मि० जिन्ना बहुत ज्यादा परस्पर सहमत हैं। राजनैतिक समस्या के सुलझाने के हमारे तरीकों में मि० जिन्ना हमसे पूर्णतः सहमत नहीं हैं, अतः हमने अपना जवाब अलग वायसराय को भजने का निश्चय किया। हमारी बातचीत ने बहुत सी कुशंकाओं को दूर कर दिया है और उससे हम पिछले सालों में जहां थे उससे एक दूसरे के बहुत नजदीक आ गये हैं। मुझे विश्वास है कि जो कुछ मतभेद राजनैतिक या साम्प्रदायिक बचे हुए हैं, वे भी दूर हो जायँगे। पिछले सप्ताह भी हमारे और मि० जिन्ना के बीच ऐसा कोई मतभेद नहीं था जो हमारे रास्ते में बाधक होता। मगर हमारे और ब्रिटिश सरकार के बीच मौलिक मतभेद हैं, इस सम्बन्ध में कोई ग़लती न होनी चाहिए। ब्रिटिश सरकार द्वारा युद्ध के उद्देश्यों और भारतीय स्वतन्त्रता के बारे में साफ शब्दों में घोषणा करने के मार्ग में कोई बाधक नहीं है, सिवाय उनके अपने आपको छोड़कर। जबतक इस प्रकार की संतोषजनक घोषणा नहीं की जाती, तबतक दूसरे मसले पैदा ही नहीं होते और हम ब्रिटिश सरकार की नीति में किसी भी रीति से सहयोग नहीं दे सकते। इस सीधे प्रश्न में साम्प्रदायिक प्रश्न को लाना जनता के मन को धुंधला करना है और उनका ध्यान ग़लत बात पर केन्द्रित करना है। ६ नवम्बर, १९३९.

: ३३ :

कांग्रेस क्या हिन्दू संस्था है ?

[७ नवम्बर १९३९ को लार्ड-सभा में दिये गए लार्ड ज़ेटलैण्ड के भाषण पर महात्मा गान्धी का निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुआ—सं०]

लार्ड ज़ेटलैण्ड ने अपने वक्तव्य के अन्त में जो यह इलजाम लगाया है कि राष्ट्रीय महासभा याने कांग्रेस हिन्दुओं की ही प्रातिनिधिक संस्था है और इसलिए वह सिर्फ नाम के लिए राष्ट्रीय है। पर वस्तुतः वह साम्प्रदायिक है, ज़ाहिरा तौर पर उसके बारे में हमने कुछ नहीं सुना। पर कांग्रेस की इससे बड़ी कोई मानहानि नहीं हो सकती। क्योंकि अपने जन्म-काल से ही वह राष्ट्रीय रही है, उसके जन्मदाता एक अंग्रेज थे। स्वर्गीय ए० ओ० ह्यूम बहुत समय तक उसके मन्त्री रहे हैं। उसके मंत्रिग्रों में एक या दो सदा मुसलमान रहे हैं। मुसलमान, अंग्रेज, ईसाई और पारसी उसके अध्यक्ष हुए हैं। दादाभाई जबतक कि काम करने के क़ाबिल रहे तबतक कांग्रेस के कर्त्ता-धर्त्ता वही रहे हैं। हरेक बात में वही रास्ता दिखलाते थे और

उन्हीं का दिमाग़ काम करता था । सर फिरोज़शाह मेहता बम्बई प्रान्त के बेताज के बादशाह थे और वही जिनको चाहते उनको कांग्रेस और बम्बई-कारपोरेशन का अध्यक्ष बनाते थे । बदरुद्दीन तय्यबजी बरसों तक कांग्रेस की कार्रवाइयों में निश्चयात्मक भाग लेते रहे हैं । यह कौन नहीं जानता कि जब तक हकीम अजमल खां साहब जिन्दा रहे कांग्रेस की कारवाइयों में कोई भी बात बिना उनकी स्वीकृति के नहीं होती थी ? डा० अंसारी बरसों तक संयुक्त प्रधान मंत्री रहे हैं । खिलाफ़त के दिनों में अलीबन्धुओं का कांग्रेस पर जो प्रभाव था, उसे पाठक जानते ही हैं । आज भी कांग्रेस की कार्यसमिति मौलाना अबुलकलाम आजाद के सहयोग और बुद्धिमत्तापूर्ण पथ-प्रदर्शन के बगैर कुछ नहीं करती । हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्नों पर जो कुछ निश्चय होता है वह उन्हीं की राय से होता है । कांग्रेस अब अपनी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में है और अपने इस सारे इतिहास में वह इस प्रकार समस्त भारत के प्रतिनिधित्व का प्रयत्न करती रही है जिस प्रकार और किसी संस्था ने नहीं किया । और कांग्रेस ने जो भी विजय पाई उससे सभी जातियों को लाभ पहुंचा है ।

"अगर सचमुच ऐसी बात है, तो कांग्रेस ने उस कार्य को क्यों हथिया लिया, जोकि अखिल भारतीय हिन्दू सभा का काम है ?" कुछ क्रुद्ध पत्र-प्रेषक मुझसे पूछते हैं । 'ट्रिब्यून' ने भी उसके सम्पादक को जो कांग्रेस की तर्कहीनता मालूम पड़ी उस पर प्रकाश डाला है । इस तर्कहीनता या असंगति को क़बूल करना पड़ेगा । लेकिन तर्क ही से जीवन-व्यवहार नहीं होता, न संख्याओं का ही काम चलता है । स्पष्टतः देश राजनैतिक प्रगति के लिए कांग्रेस को साम्प्रदायिक समाधान की आवश्यकता प्रतीत हुई और उसके फलस्वरूप १९१६ में कांग्रेस-लीग-पैक्ट की सृष्टि हुई ।

तभी से कांग्रेस ने साम्प्रदायिक एकता को कांग्रेस-कार्यक्रम का आधार बना लिया है । तार्किक दृष्टि से यद्यपि यह काम साम्प्रदायिक संस्थाओं का होना चाहिए था, लेकिन विविध जातियां अगर आपस में लड़ें-झगड़ें और जब राष्ट्रीय हित की दृष्टि से उसका हल आवश्यक हो जाये तो कांग्रेस जैसी लोक-संस्था चुपचाप सबकुछ देखती भर नहीं रह सकती । इस प्रकार उसे स्पष्टरूप से कर्तव्य का जो आह्वान मालूम पड़ा उसके सामने वह उसकी अवहेलना नहीं कर सकी । कांग्रेस ऐसी संस्था है और होनी चाहिए, जो साम्प्रदायिक मामलों में शुद्ध राष्ट्रीय और निष्पक्ष दृष्टि रक्खे । इसके विरुद्ध कुछ भी क्यों न कहा जाये, मैं इस बात पर जोर देता हूं कि कांग्रेस में ही भारत की आशा और आकांक्षायें निहित हैं । जहाँतक कि भारत की राजनैतिक आकांक्षाओं का सम्बन्ध है, अगर यह सारे भारत का प्रतिनिधित्व न करती होती तो यह किसी के साथ कोई समझौता या करार नहीं कर सकती । लेकिन इसकी तो सारी परम्परा ही ऐसी है कि यह मुसलमानों के खिलाफ हिन्दुओं का या हिन्दुओं के खिलाफ़ मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती । वह तो भारत के सब पुत्रों के सर्वसामान्य हित के प्रतिनिधित्व के ही योग्य है । सामान्य हित की दृष्टि से किन्हीं आदमियों या उनकी संख्याओं के साथ समझौते करने की कांग्रेस कोशिश करे तो उस

में मुझे कोई गलती नहीं मालूम पड़ती। हां, यह कहने की कोई जरूरत नहीं कि वे हों परस्पर सहायक, परस्पर विरोधी हर्गिज न हों। इसमें शक नहीं कि यह काम है मुश्किल। लेकिन अगर लोग और संस्थाएं कांग्रेस के प्रति सद्भावना से काम लें, तो यह काम उसके क्षेत्र या उसकी योग्यता से बाहर का नहीं है। आज उसे सबका विश्वास प्राप्त नहीं है। इसलिए उसे उस दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। अगर कोई और संस्था ऐसा करे तो कांग्रेसजन उसका स्वागत ही करेंगे।''

'हरिजन-सेवक', १८ नवम्बर, १९३९.

: ३४ :

कार्यसमिति का प्रस्ताव

[इलाहाबाद में २३ नवम्बर १९३९ को कांग्रेस-कार्यसमिति ने भारत के वर्तमान संकट पर नीचेलिखा प्रस्ताव पास किया—सं०]

''यूरोप में जो युद्ध का संकट पैदा होगया है और भारत पर उसका जो प्रभाव पड़ रहा है उसके सम्बन्ध में कांग्रेस-कार्यसमिति द्वारा प्रकाशित की गई नीति का देश ने जो स्वागत किया उससे कार्यसमिति को हर्ष हुआ है। यह नीति जिसका कि आधार कांग्रेस की अनेक घोषणाएँ हैं, कार्यसमिति द्वारा प्रकाशित किये गए १४ सितम्बर १९३९ के वक्तव्य में निर्धारित की गई थी। वक्तव्य के बाद की घटनाओं ने उसके औचित्य को सिद्ध कर दिया है। युद्ध की प्रगति, ब्रिटिश और फ्रेंच सरकार की नीति और खासतौर से वह घोषणा, जो ब्रिटिश सरकार की तरफ़ से भारत के सम्बन्ध में की गई है, यह ज़ाहिर करती है कि वर्तमान युद्ध सन् १९१४–१८ के महायुद्ध की भाँति साम्राज्यवादी उद्देश्यों के लिए लड़ा जा रहा है। और भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद इसी तरह क़ायम रहेगा। ऐसी लड़ाई और नीति से कांग्रेस सहयोग नहीं कर सकती और न यह बात ही देख सकती है कि एक ऐसे उद्देश्य के लिए उसके साधनों का शोषण किया जाये।

''कार्यसमितिने ब्रिटिश सरकार से साफ़-साफ़ यह मांग की थी कि वह लोकतंत्र-वाद तथा साम्राज्यवाद की दृष्टि से अपने युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों की घोषणा करे और खासतौर से यह घोषणा कि उन्हें भारत के सम्बन्ध में कैसे अमल में लाया जायगा। ब्रिटिश सरकार के युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों को उसी समय उचित कहा जा सकता है जबकि उनमें साम्राज्यवाद के नाश और इस बात की व्यवस्था हो कि भारत के साथ एक स्वतन्त्र राष्ट्र का-सा व्यवहार होगा और उसकी नीति उसकी जनता के मत के अनुसार निर्धारित की जायगी। उक्त माँग का ब्रिटिश सरकार ने जो जवाब दिया है वह क़तई असन्तोषकारक है। ब्रिटिश सरकार की ओर से गलतफ़हमी पैदा करने और मख्य और नैतिक प्रश्न पर परदा डालने की कोशिश की गई है। कार्य-समिति के प्रस्ताव के आधार पर घोषणा न कर सकने के कारणों में साम्प्रदायिकता

अल्पसंख्यकों के हक़ और नरेशों के हक़ों की दलील पेश की गई है। कहा गया है कि ये सब कठिनाइयाँ हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता में बाधा डाल रही हैं। समिति पूरा ज़ोर देकर यह घोषित कर देना चाहती है कि साम्प्रदायिकता तथा अल्पसंख्यकों का कोई भी सवाल ऐसा नहीं है, जो कांग्रेस की माँग के पूरा करने में बाधक होता हो। अल्पसंख्यक वर्ग भारत की स्वतन्त्रता के हक़ का विरोध नहीं करते। राजा लोग ब्रिटिश सरकार के प्रतीक चिन्ह हैं। अन्त में देशी राज्यों की प्रजा इस बात का निश्चय करेगी कि आज़ाद हिन्दुस्तान में वे क्या भाग लेंगे। जिस मामले का उनसे (देशी राज्यों की प्रजा से) घनिष्ठ सम्बन्ध है उसमें ब्रिटिश सरकार ने उनके मत का निरन्तर निरादर किया है। अपने इरादों की घोषणा में ब्रिटिश सरकार का किसी भी तरह भारत की स्वतन्त्रता का विरोध करनेवालों से कोई ताल्लुक़ नहीं है और उनका वास्ता होना ही नहीं चाहिए। बेमतलब के सवाल उठाकर युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्य और भारत की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध की घोषणा के टालने को कार्यसमिति यही समझ सकती है कि ब्रिटिश सरकार भारत में साम्राज्यशाही प्रभुत्व देश के प्रतिक्रियावादी लोगों की सहायता से बनाये रखना चाहती है।

"कांग्रेस ने युद्ध-संकट तथा उससे पैदा होनेवाली समस्याओं को एक नैतिक प्रश्न समझा है। सौदा करने की भावना में उसने मौजूदा स्थिति से फ़ायदा उठाने का प्रयत्न नहीं किया है। हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि किसी अन्य प्रश्न पर विचार करने के पहले युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों की घोषणा तथा भारत के प्रश्न का हल संतोषजनक तरीक़े से हो जाना चाहिए। अगर जनता के प्रतिनिधियों को वास्तविक सत्ता न दी गई, तो संक्रमणकाल में किसी भी प्रकार से काँग्रेस शासन की जिम्मेदारी उठाने को तैयार नहीं है। यह समिति उस जवाब को उचित समझती है, जो कांग्रेस के अध्यक्ष ने गत ३ नवम्बर को वायसराय महोदय को दिया था।

"समिति चाहती है कि भारत की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया जाय तथा उसका ऐलान कर दिया जाय और इस बात की घोषणा कर दी जाय कि एक राष्ट्रीय-पंचायत द्वारा भारत की जनता को अपना शासन-विधान तैयार करने का हक़ है। ब्रिटिश नीति से साम्राज्यवाद का रंग हटाने के लिए ऐसा करना ज़रूरी है। ऐसी घोषणा के बाद कांग्रेस सहयोग के सम्बन्ध में विचार करेगी। समिति की यह राय है कि एक स्वतन्त्र देश का विधान बनाने का राष्ट्रीय-पंचायत ही एक लोकतन्त्रीय साधन है। जो कोई भी लोकतन्त्रवाद और स्वतन्त्रता में विश्वास रखता होगा वह इस बात से इन्कार नहीं कर सकता। कार्यसमिति को यह भी विश्वास है कि साम्प्रदायिक तथा दूसरी समस्याओं के हल का भी ठीक साधन राष्ट्रीय-पंचायत ही है। इसका यह अर्थ नहीं कि कार्यसमिति साम्प्रदायिक समस्या का हल करने में ढील डालेगी। राष्ट्रीय-पंचायत एक ऐसा विधान तैयार करेगी जिसमें माने हुए अल्पसंख्यकों के हक़ों को इतना संरक्षण दे दिया जायगा कि उन्हें संतोष हो जाये और आपस के सलाह-मशविरे से अल्पसंख्यकों के कुछ हक़ों के बारे में अगर कोई समझौता न हुआ तो

उनका फ़ैसला करा लिया जायगा। बालिग़ों को वोट देने का हक़ मानकर राष्ट्रीय-पंचायत का चुनाव होगा। उन अल्पसंख्यकों का अलग चुनाव का हक़ क़ायम रक्खा जायगा, जो वैसा चाहेंगे। सदस्यों की संख्या सम्प्रदायों की जनसंख्या को ज़ाहिर करनेवाली होगी।

"ब्रिटिश सरकार की ओर से जो घोषणाएँ की गई हैं, वे नाकाफ़ी हैं, इसलिए कांग्रेस ब्रिटिश नीति से अपने को अलग करने पर मज़बूर हुई और असहयोग की ओर पहला क़दम रखने के लिए वह कांग्रेसी प्रान्तों की सभी सरकारों से इस्तीफ़ा दिलाने पर बाध्य हुई। असहयोग की यह नीति जारी है और जबतक कि ब्रिटिश सरकार अपनी नीति में तब्दीली नहीं करती और कांग्रेस की बात को नहीं मान लेती तबतक यह नीति ज़रूर जारी रहेगी। मगर कार्यसमिति कांग्रेसवादियों को यह याद दिलाना चाहती है कि सभी प्रकार के सत्याग्रह में विरोधी के साथ सम्मानपूर्ण समझौता करने का कोई प्रयत्न उठा नहीं रक्खा जाता। अगर अहिंसात्मक लड़ाई कभी शुरू हो, तो सत्याग्रही उसके लिए हमेशा तैयार रहता है। पर वह शान्ति के लिए अपने प्रयत्नों में कभी-कभी नहीं करता और उसे हासिल करने के लिए हमेशा काम करता है। इसलिए कार्यसमिति सम्मानपूर्ण समझौता करने के उपायों की शोध जारी रक्खेगी, हालांकि ब्रिटिश सरकारने कांग्रेस के लिए दरवाज़ा वन्द कर दिया है। जो रास्ता हिन्दुस्तानियोंने खुद नहीं चुन रक्खा है, उसपर चलनें के लिए उन्हें बाध्य किये जाने के सभी प्रयत्नों तथा भारत की स्वतन्त्रता और मर्यादा के विरुद्ध पड़नेंवाली सभी बातों का कांग्रेस अहिंसात्मक उपायों द्वारा विरोध करेगी।

कांग्रेसवादियों ने ज़रूरत पड़ने पर सविनयभंग शुरू कर देने की जो इच्छा ज़ाहिर की है उसकी कार्यसमिति क़द्र करती है और उसपर अपनी खुशी ज़ाहिर करती है। लेकिन सविनय-भंग में वैसे ही सख़्त अनुशासन की आवश्यकता पड़ती है, जैसी कि हिंसात्मक युद्ध में लड़ने वाली संगठित सेना में। अगर सेना के पास विनाश के शस्त्र न हों और वह उन्हें उपयोग में लाने का तरीका न जानती हो तो वह असहाय बनी रहती है। इसी तरह सत्याग्रह के सैनिकों की सेना में यदि अहिंसा की आवश्यक बातें न हों और वह उसे न समझती हो तो वह अप्रभावकारक साबित होती है। कार्यसमिति इस बात को साफ़ कर देना जाहती है कि सविनयभंग के लिए तैयार होने की सच्ची कसौटी यह है कि कांग्रेसजन स्वयं चरखा चलायें, मिल के कपड़ों की जगह खादी को प्रोत्साहन दें और अपना यह फ़र्ज समझें कि अपने से भिन्न सम्प्रदाय के लोगों की व्यक्तिगत सेवा करके सम्प्रदायों में परस्पर एकता स्थापित करें। हिन्दू कांग्रेसवादियों को हरिजनों को समर्थन देने के जितने अवसर मिल सकें, उन सब का वे उपयोग करें।

"इसलिए कांग्रेस के संगठनों और कांग्रेसवादियों को चाहिए कि वे इस कार्य-क्रम को उत्तेजन देकर आगे की कार्रवाई के लिए तैयारी करें। उन्हें चाहिए कि वे जनता को कांग्रेस का सन्देश और उसकी नीति समझायें और उसे राष्ट्रीय-पंचायत के अर्थ बतलायें, जो कि कांग्रेस के भावी कार्यक्रम का कठिन काम है।"

हरिजन सेवक, २ दिसम्बर, १९३९.

: ३५ :

कांग्रेस-कार्यसमिति का प्रस्ताव

[कांग्रेस की कार्यसमिति ने वर्धा में हुई अपनी २२ दिसम्बर १९३९ की बैठक में नीचे लिखा प्रस्ताव पास किया--सं०]

कार्यसमिति ने भारत-मन्त्री के ताजा एलान को ध्यान देकर पढ़ा है और उस पर समिति को अफसोस हुआ है। उन्होंनें क़ौमी सवाल का जिस तरह जिक्र किया है उससे मुद्दे की बात घपले में पड़ जाती है और जनता का ध्यान इस असली प्रश्न से हट जाता है कि अंग्रेज लड़ाई के और ख़ासतौर पर हिन्दुस्तान की आजादी के बारे में अपने इरादे खोल कर नहीं बता सके हैं।

कार्य-समिति की राय में जबतक अलग-अलग दल किसी तीसरे के मुंह की तरफ ताकते रहेंगे तब तक क़ौमी सवाल जैसा चाहिए वैसा कभी हल नहीं हो सकेगा, क्योंकि इन दलों को यह आशा रहेगी कि भले ही राष्ट्र का कुछ भी नुक़सान क्यों न हो, उन्हें तो तीसरे की कृपा से खास रियायतें मिल ही जायंगी। जबतक किसी प्रजा पर किसी विदेशी सत्ता का राज है तबतक उस प्रजा के जुदा-जुदा अंगों में फूट रहेगी ही।

कांग्रेस से इन अलग-अलग हिस्सों को मिलाकर एक करने की जरूरत कभी छिपी नहीं रही है। यही एक संस्था है जिसने अपना राष्ट्रीय स्वरूप कायम रखने के लिए एका करने की बराबर कोशिश की है और यह बात भी नहीं है कि वह सदा नाकामयाब ही रही हो। कार्यसमिति का विश्वास है कि स्थायी एकता के दर्शन तो उसी वक्त होंगे जब विदेशी हुकूमत का नामनिशान मिट जायगा।

समिति की पिछली बैठक के बाद जो घटनायें हुई हैं उनसे यह राय पक्की हो गई है। कार्यसमिति को मालूम है कि देश के भीतर परस्पर विरोधी तत्व रहे तो हिन्दुस्तान की स्वाधीनता बनी नहीं रह सकेगी। इसलिए जब ब्रिटिश सरकार साम्प्रदायिक सवाल उ ाती है तो समिति को उसका यह अर्थ लगाने का हक़ हो जाता है कि सरकार सत्ता छोड़ने को राज़ी नहीं है।

कांग्रेस ने जैसी राष्ट्रीय-पंचायत तजवीज की है वही इस सवाल का आखिरी निपटारा करने का एकमात्र उपाय है। इस तजवीज़ में यह सोचा गया है कि अल्पसंख्यकों को पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व और जहां जरूरी हो, अलग चुनाव का अधिकार दिया जाये। कांग्रेस की तरफ से पहले ही यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि अल्पसंख्याओं के हक़ों की रक्षा जैसी ये चाहेंगे वैसी ही की जायगी और कहीं मतभेद रहेगा तो उन मामलों का निष्पक्ष अदालत से फ़ैसला करा लिया जायगा।

कांग्रेसवालों ने अब अच्छी तरह समझ लिया है कि खूब परिश्रम किए बिना

स्वाधीनता मिलने वाली नहीं है। कांग्रेस ने अहिंसा का अहद लिया है, इसलिए उस का आखिरी जोर सविनय-भंग है, जो सत्याग्रह का ही एक अंग है। सत्याग्रह का अर्थ है सब के लिए और विशेषकर विरोधियों के लिए सद्भाव रखना। इसलिए एक-एक कांग्रेस-जन का फ़र्ज़ है कि वह सद्भाव बढ़ावे और पैदा करे।

खादी का कार्यक्रम अहिंसा, मेल-मिलाप और आर्थिक स्वाधीनता की मानी हुई निशानी है, और उसके सफल हुए वगैर काम नहीं चल सकता। इसलिए कार्य-समिति को उम्मीद है कि सब कांग्रेस-संस्थाएँ रचनात्मक कार्यक्रम पर ज्यादा-से-ज्यादा अमल करके अपने आपको इतना तैयार कर लेंगी कि जिस वक्त देश की तरफ़ से उन्हें आवाज़ पड़े वे मैदान में उतर सकें। **'हरिजन-सेवक'** ३० दिसम्बर, १९३९.

: ३६ :

साम्राज्यान्तर्गत स्वराज

[बम्बई के ओरियण्ट क्लब में १० जनवरी १९४० को भाषण देते हुए वायसराय ने भारत की मांग पर ब्रिटिश सरकार के इरादों और उद्देश्यों का स्पष्टीकरण किया। भाषण का वही अंश नीचे दिया जाता है।—सं०]

"आप सब यह अच्छी तरह से जानते हैं कि सितम्बर के बाद से स्थिति क्या-से-क्या हो गई है। उस पर आज मैं विस्तार में पड़ना नहीं चाहता। जैसा कि आप जानते हैं सम्राट की सरकार से मांग की गई थी कि वह अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करे और बतावे कि भारत के बारे में उसके इरादे क्या हैं। उसके जवाब में सम्राट की सरकार ने मेरे द्वारा दिये गए वक्तव्यों से, और पार्लमेण्ट में यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत के लिए उनका ध्येय साम्राज्यंतर्गत पूर्ण स्वराज्य—वेस्ट मिंस्टर स्टेच्यूट की किस्म का साम्राज्यंतर्गत स्वराज्य—देना है। और जहांतक मध्यवर्ती काल का सम्बन्ध है, (और सरकार की इच्छा है कि यह मध्यवर्ती काल यथासंभव कम-से-कम हो) सरकार १९३५ के एक्ट की योजना को पुनः आरम्भ करने पर युद्ध के अन्त होने पर ज्योंही संभव हुआ, भारतीय नेताओं का मत लेकर विचार करने के लिए तैयार है। सरकार इस बात पर भी तैयार है कि इस दरम्यान बड़ी जमातों के नेताओं के बीच यथावश्यक व्यवस्था का खयाल कर इस बात का आश्वासन दिला दे कि वह सुचारु रूप से अमल करेगी और अपने इस इरादे के पीछे तात्कालिक हार्दिकता दिखाने के लिए वह गवर्नर-जनरल की कार्यवाहक कौंसिल में कुछ थोड़े से राजनैतिक नेता जोड़ कर उसे बढ़ाने के लिए तैयार है। भारत और हमारे सामने आज जो कठिनाइयां हैं उन्हें दूर करने के अर्थ सहायता देने के लिए भी सरकार तैयार और इच्छुक है। लेकिन मुझे बहुत खेद है कि सरकार के इन आश्वासनों से वे संदेह और अनिश्चिततायें दूर नहीं हो पाई हैं जिनके कारण कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल

अपने पदों से हट गए हैं और जिनके कारण सात प्रान्तों में एक्ट के विशेष अवस्था-नुरूप अधिकारों का सहारा लेना आवश्यक हुआ है ।

"मेरा विचार है कि युद्ध के शुरू होने के समय से जो घोषणायें सम्राट की सरकार की ओर से हुई हैं, उनसे बिलाशुबह यह स्पष्ट हो गया है कि सरकार के इरादे क्या हैं और सहायता देने के लिए सरकार कितनी इच्छुक है ।"

: ३७ :

एकदिल होकर चलें

[स्वाधीनता-दिवस, (२६ जनवरी १९४०) को लीजाने वाली आजादी की प्रतिज्ञा में कांग्रेस की कार्यसमिति ने अपनी २२ दिसम्बर १९३९ को वर्धा में हुई बैठक में जो भाग जोड़ा है उसको कुछ सज्जनों ने पसन्द नहीं किया । समाजवादी-दल के प्रधान मन्त्री, श्री जयप्रकाश नारायण तथा भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री, श्री सम्पूर्णानन्दजी की आपत्तियों पर स्थिति स्पष्ट करते हुए महात्मा गांधी का निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुआ—सं०]

श्री जयप्रकाश नारायण और श्री सम्पूर्णानन्दजी ने साफ़ शब्दों में कह दिया है कि हम २६ जनवरी को ली जानेवाली प्रतिज्ञा में जो भाग जोड़ा गया है उसके खिलाफ़ हैं। मुझे उनका बड़ा लिहाज़ है । वे योग्य हैं, वीर हैं और उन्होंने देश की खातिर कष्ट उठाये हैं । लड़ाई में वे मेरे साथी बन सकें तो इसे मैं अपना सौभाग्य समझूं । मैं उन्हें अपने विचार का बना सकूं तो मुझे कितनी ख़ुशी हो ! लड़ाई आनी ही है और मुझे उसका नायक बनना है तो यह काम मैं ऐसे सहायकों के भरोसे नहीं कर सकता जिनका कि कार्यक्रम पर अधूरा विश्वास हो या जिनके दिल में उसके बारे में शंकाएँ हों ।

मैं लड़ने के लिए लालायित नहीं हूँ । मैं तो उसे टालने की कोशिश कर रहा हूँ । कार्यसमिति के सदस्यों की बात कुछ भी हो, जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं सुभाषबाबू के इस आरोप से पूरी तरह सहमत हूँ कि मैं अँग्रेज़ों के साथ समझौता करने के लिए उत्सुक हूँ, बशर्ते कि समझौता इज्ज़त के साथ हो सके । सच तो यह है कि सत्याग्रह में तो यह ज़रूरी होता है । इसलिए मुझे कोई जल्दी नहीं है । फिर भी समय आ गया और मुझे एक भी साथी न मिला तो मैं अकेला भी लड़ सकूंगा । मगर अँग्रेज़ों पर से मेरा विश्वास उठ नहीं गया है । लार्ड लिनलिथगो की ताज़ी घोषणा मुझे पसन्द आई है । उनकी सचाई पर मुझे भरोसा है । बेशक उनके भाषण में कई जगह दोष हैं जिन्हें साफ़ करना पड़ेगा । पर ऐसा लगता है कि उसमें दोनों राष्ट्रों के लिए सम्मानपूर्ण समझौते के बीज मौजूद हैं । इसलिए मेरे साथ काम करनेवालों को मेरा यह पहलू भी समझ रखना चाहिए । शायद मतभेद रखनेवालों की दृष्टि से मेरा समझौता करने का यह स्वभाव एक दोष हो । ऐसा है तो देश को यह मालूम हो जाना चाहिए ।

श्री जयप्रकाश नारायण ने अपनी और समाजवादी दल की स्थिति साफ़ करके अच्छा किया। रचनात्मक कार्यक्रम के बारे में वह कहते हैं--"हमने इसे अपनी लड़ाई के एकमात्र या पूरी तरह कारगर हथियार के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया है।...इन मामलों पर हमारे विचार ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं। मौजूदा संकट-काल में हमारे राष्ट्रीय नेताओं की लाचारी देखकर वे विचार कुछ मज़बूत ही हुए हैं।... उस दिन विद्यार्थियों को स्कूल कॉलेजों से निकल आना चाहिए और मज़दूरों को काम बन्द कर देना चाहिए।"

अगर अधिकांश कांग्रेसियों का यही विचार है जो श्री जयप्रकाश ने समाजवादी दल की तरफ़ से प्रकट किया है, तो मैं इस तरह की सेना को साथ लेकर सफलता पाने की कभी आशा नहीं रख सकता। उनकी न कार्यक्रम में श्रद्धा है, न वर्तमान नेताओं में। मेरे ख़याल से जिस कार्यक्रम पर वह सिर्फ़ राष्ट्र के नेताओं की इच्छा के कारण ही चलने की बात कहते हैं उसकी उन्होंने, बिलकुल अनजान में ही सही, निन्दा करदी। ज़रा ऐसी फ़ौज की कल्पना तो कीजिए जो लड़ाई के लिए कूच करने वाली है, लेकिन न तो जिन हथियारों से उसे काम लेना है उनमें उसका विश्वास है और न जिन नेताओं ने यह हथियार बताये हैं उनपर श्रद्धा है; ऐसी सेना तो अपना, अपने नायकों का और काम का सत्यानाश ही कर सकती है। मैं श्री जयप्रकाश की जगह होऊँ (और मुझे लगे कि मैं अनुशासन का पालन कर सकता हूँ) तो मैं अपने दल को चुपचाप घर में बैठे रहने की सलाह दूं। अगर ऐसा न कर सकूं तो निकम्मे नेताओं की बुरी योजनाओं को मटियामेट करने के लिए खुली बग़ावत का झंडा फहरा दूं।

श्री जयप्रकाश चाहते हैं कि विद्यार्थी स्कूल-कॉलेजों से निकल आयें और मज़दूर काम छोड़ दें। यह तो अनुशासन-भंग करने का पाठ पढ़ाना हुआ। मेरी चले तो मैं हर विद्यार्थी से कहूँ कि छुट्टी न मिले या प्रिंसीपल २६ जनवरी के उत्सव में भाग लेने के लिए स्कूल या कॉलेज बन्द करने का फैसला न करें तो उन्हें स्कूल या कॉलेज में ही रहना चाहिए। इसी तरह की सलाह मैं मज़दूरों को दूँगा। श्री जयप्रकाश की शिकायत है कि स्वाधीनता के दिन जो काम करना है उसके बारे में कार्यसमिति ने कोई तफसील नहीं बताई। मैंने समझा था कि जब भाईचारे का और खादी का कार्यक्रम है तो फिर तफ़सीलवार हिदायतें देने की क्या ज़रूरत है? मुझे आशा है कि हर जगह कांग्रेस-कमेटियाँ कताई-प्रदर्शन, खादी-फेरी और ऐसे ही दूसरे आयोजन करेंगी। मैं देखता हूँ कि कुछ कमेटियाँ तो ऐसा कर भी रही हैं। मैंने कांग्रेस-कमेटियों से आशा तो यह रक्खी थी कि जिस दिन कार्यसमिति का प्रस्ताव प्रकाशित हो जाये उसी दिन से तैयारियाँ शुरू हो जायेंगी। मैं राष्ट्र की तैयारी सिर्फ़ इसी बात से नहीं जानूँगा कि देशभर में कितना सूत काता गया, बल्कि मुख्यतः इस बात से जानूँगा कि खादी कितनी बिकी।

अन्त में श्री जयप्रकाश का कहना है कि "हमने अपनी तरफ़ से तो एक नया कार्यक्रम मज़दूर और किसान-संगठन का बनाया है, ताकि उसके पाये पर क्रान्तिकारी

सार्वजनिक आन्दोलन चलाया जाये।"

इस तरह की भाषा से मुझे डर लगता है। मैंने भी संगठन तो किसान और मज़दूर दोनों का किया है, मगर शायद उस तरह पर नहीं किया जैसा श्री जयप्रकाश के जी में है। उनके वाक्य को और खोलकर समझाने की ज़रूरत है। अगर उनका संगठन पूरी तरह शान्तिपूर्ण न हो तो उससे अहिंसक कार्रवाई को उसी तरह नुक़सान पहुँच सकता है जिस तरह कि रौलट क़ानूनवाले सत्याग्रह को पहुँचा था और बाद में ब्रिटिश युवराज के आने पर बम्बई की हड़ताल के समय पहुँचा था।

श्री सम्पूर्णानन्द ने जो सवाल उठाया है वह आध्यात्मिक है। उनका ख़याल है कि मूल प्रतिज्ञा में कोई हेर-फेर नहीं होना चाहिए था, हालांकि वह कहते हैं और सही कहते हैं कि वह फैला हुआ-सा है। वह प्रतिज्ञा मैंने ही बनाई थी। मैं लोगों से इतना ही नहीं चाहता था कि वे सिर्फ़ स्वाधीनता का मन्त्र ही जपें, मैं उन्हें यह भी समझाना चाहता था कि वे इसे क्यों और किसलिए लेते हैं। आगे चलकर जब उसके कुछ भाग व्यर्थ हो गये तब उसमें इस साल संशोधन कर लिया गया। मैं मानता हूँ कि आज़ादी का मन्त्र पवित्र है। यह मंत्र हमें पहले-पहल मिला था जब लोकमान्य ने यह कहा कि 'स्वराज मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार हो'। यह मन्त्र हज़ारों ने सीख लिया और दिन-ब-दिन प्रबल होता जा रहा है। आज तो वह करोड़ों हृदयों में निवास करता है। मेरी राय है कि जो भाग जोड़ा गया है वह ज़रूरी था। इससे मूल प्रतिज्ञा की पवित्रता बढ़ गई है और लोगों को मालूम होजाता है कि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता हासिल करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति क्या योग दे सकता है।

इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि असल में श्री सम्पूर्णानन्द को आपत्ति इस कारण हुई है कि उन्हें रचनात्मक कार्यक्रम में अविश्वास है। वह ख़ुद कहते हैं: "अगर उसे प्रतिज्ञा का अलग न होनेवाला हिस्सा बना देने का यह अर्थ हो कि कारख़ानों द्वारा सामूहिक उत्पत्ति के मुक़ाबिले में ग्राम-उद्योगों की नीति से हम निश्चित रूप से बँध जायें तो समाजवादी होने के नाते मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकता।"

बेशक, मैं प्रतिज्ञा का क़ानूनी अर्थ नहीं बता सकता। वह तो कार्यसमिति ही बता सकती है। मगर अहिंसक युद्ध की घोषणा और संचालन के लिए ज़िम्मेदार सेनापति की हैसियत से यह कहना मेरा धर्म है कि यह मनोवृत्ति जनता में प्रचार करने के काम में दखल देगी। सम्पूर्णानन्दजी जैसे नेता इस युद्ध में या तो पूरे दिल से ही पड़ सकते हैं या बिल्कुल न पड़ें। अगर प्रतिज्ञा में जोड़े हुए हिस्से का अर्थ लगाने में वे आधे इधर और आधे उधर रहे, तो जनता के दिमाग़ में गड़बड़ पैदा होगी। अगर राष्ट्रीय कार्यक्रम में खादी का स्थायी स्थान नहीं है तो उसे जोड़े हुए भाग में भी जगह नहीं मिलनी चाहिए। अगर खादी से ज्यादा कारगर कोई और चीज़ है तो उसे राष्ट्र के सामने पेश करना चाहिए। चूँकि बड़ी लड़ाई आने की बात है, सिर्फ़ इसीलिए सचाई को दबाने-छिपाने की नीति नहीं होनी चाहिए। सबके एक-से विचार होना जरूरी नहीं है। पर सम्पूर्णानन्दजी की तरह जिन लोगों को

लड़ाई चलानी है उनका उस कार्यक्रम में जी-जान से विश्वास होना चाहिए जिसे उन्हें पूरा करना है। बहानों से हमारी मौजूदा आवश्यकताएँ पूरी नहीं होंगी।

एक बड़े प्रभावशाली काँग्रेसी ने मुझे सुझाया है कि ज्योंही मैं सविनय-भंग की घोषणा कर दूँगा, त्योंही मुझे इस बार देश की तरफ़ से ऐसा जवाब मिलेगा कि मैं देखकर दंग रह जाऊँ। उन्होंने मुझे यक़ीन दिलाया है कि सारा मज़दूर-जगत् और हिन्दुस्तान के बहुत-से हिस्सों में किसान लोग एकसाथ हड़ताल बोल देंगे। मैंने उन्हें कह दिया कि ऐसा हुआ तो मुझे बड़ी परेशानी होगी, और मेरी सारी योजना बिगड़ जायगी। मुझे यह क़बूल करना चाहिए कि अभी तो मेरे सामने कोई निश्चित योजना नहीं है। मैं यही कह सकता हूँ कि पहले की तरह जब ईश्वर आज्ञा देगा तो मेरे लिए योजना भी बनाकर भेज देगा। मेरे तूफ़ानी जीवन में उसी ने मुझे हमेशा रास्ता सुझाया और सहारा दिया है। मगर मैं इतना जानता हूँ कि मैं देश के सामने कोई भी योजना रक्खूँ उसमें अनियमित और बिखरी हुई हड़तालों की गुंजायश न होगी, क्योंकि उनसे हिंसा हुए बिना न रहेगी, और हिंसा हुई तो अहिंसक युद्ध अपने आप बन्द हो जायगा। इसका अर्थ यह होगा कि मेरी ज़रूरत नहीं रही। मुझे विश्वास है कि समाजवादी नेता और मतभेद रखनेवाले दूसरे लोग मुझसे यह आशा तो नहीं रखते होंगे कि जिस युद्ध के बारे में मैं जानता हूँ कि उससे सत्यानाश ही होने वाला है उस युद्ध को मैं शुरू करदूँ। मैं ऐसे सहायक और सैनिक चाहता हूँ जो एकमन से काम करें।

हमें किसी-न-किसी तरह नाममात्र की स्वाधीनता मिल भी जाये और हमने मेरे बताये हुए ढंग से लड़ाई नहीं जीती, तो भी हम अपना राष्ट्रीय कारबार बहुत सफलता-पूर्वक न चला सकेंगे। सच्ची अहिंसा के बिना पूरी अराजकता होगी। मुझे उम्मीद है कि जान-बूझकर ऐसी लड़ाई चलाने का काम हाथ में लेने की मुझ से आशा नहीं रक्खी जायगी, जिसका नतीजा अराजकता और ख़ूनख़राबी ही होना है।

'हरिजन-सेवक', २० जनवरी, १९४०

: ३८ :

आत्म-निरीक्षण का दिवस

[२६ जनवरी १९४० को आत्म-निरीक्षण का दिवस बनाकर अपने दिलों को टटोलने और देखने के लिए कि अपने उच्च आदर्शों, शुभ उद्देश्यों और विशुद्ध साधनों के प्रति देशवासी सच्चे साबित हुए हैं या नहीं, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने वर्धा से १७ जनवरी १९४० को निम्नलिखित अपील निकाली। —सं०]

स्वाधीनता-दिवस नज़दीक है। १९३० से लेकर इस रोज़ हर साल हम अपने राष्ट्र और संसार के सामने अपनी प्रतिज्ञा को दोहराते रहे हैं, कि हम उस समय तक विश्राम नहीं लेंगे जबतक कि पूर्ण स्वराज हासिल न कर लेंगे और शरीर और आत्मा

को बाँधनेवाली विदेशी सत्ता की जंज़ीरों से मुक्त न हो जायँगे। आज हम नाज़ुक समय में से गुज़र रहे हैं। हरेक राष्ट्र को, जो कि कमज़ोर और विभक्त है, मौत और विनाश की ज़िम्मेदारी में, जो संसार पर मँडरा रहे हैं, हिस्सा बटाना चाहिए।

गुलाम को ग़ुलामी की जिम्मेदारी और नफ़रत में मालिक के साथ ज़रूर अपना हिस्सा बटाना चाहिए। कमज़ोर राष्ट्र ही साम्राज्यवाद को जन्म देते हैं। इसलिए आइए, यह दिन हमारे लिए आत्म-निरीक्षण का हो। इस दिन हमें अपने दिलों को टटोलना चाहिए कि हमने वैयक्तिक या राष्ट्रीय कार्य से दुःख को लम्बा तो नहीं बना दिया है। हमें ख़ुद अपने से पूछना चाहिए कि क्या हम अपने उच्च आदर्शों, शुभ उद्देश्यों और विशुद्ध साधनों के प्रति, जिनको कि हमने अपना ध्येय पूरा करने के लिए अपने सामने रक्खा था, सच्चे साबित हुए हैं। हममें से हरेक को पूछना चाहिए, क्या मैंने अपने अन्दर से फ़िरकापरस्ती को बिल्कुल निकाल दिया है? क्या मैंने अपने से भिन्न धर्म को माननेवाले और जुदा मत रखनेवाले व्यक्तियों को अपने भाई के समान समझना शुरू कर दिया है? हिन्दू होने के नाते मैंने अस्पृश्यता का कलंक मिटाने के लिए क्या अपना फ़र्ज़ अदा किया है? क्या कमज़ोर जातियों के लोगों की तरक्की में अपनी महत्वाकांक्षा को आड़े आने दिया है? क्या मैंने उनका बोझ हलका किया है? क्या मैंने रोज़ाना की ज़रूरतों और खरीद-फ़रोख्त में करोड़ों भूखे, नंगे लोगों को, जो कि सात लाख गाँवों में बँटे हुए हैं, याद रक्खा है? क्या मैंने अपने वैयक्तिक जीवन से उनके सामने ऐसी मिसाल रक्खी है कि वे अपनी सहायता के लिए क्या कर सकते हैं?

अगर इस आत्म-निरीक्षण में हम अपने को पायें कि हम इन कर्त्तव्यों की उपेक्षा करते रहे हैं, या उचित रीति से उनका पालन नहीं किया है, तो हम इस दिन, स्वाधीनता-दिवस पर, मानवता को साक्षी करके, अहद करें कि अब और अधिक इन कर्त्तव्यों का पालन करने में उपेक्षा न करेंगे। दुनिया विनाशक युद्ध के मुँह में है, जो संसार और सभ्यता की बुनियाद को ही नष्ट कर देना चाहता है।

अगर यह युद्ध सब दलों ने अपने स्वार्थों के वश होकर चलाया, तो हमें किसी मानवीय और समान सामाजिक व्यवस्था की आशा छोड़ देनी चाहिए। इस लड़ाई में हम क्या करें, यह न केवल हमारे लिए, बल्कि सारे संसार के लिए महत्वपूर्ण है, यदि हम अहिंसात्मक साधनों से संसार के सामने सिद्ध कर देंगे कि यह अब भी लड़ाई के नाशक साधनों के अभाव में बचाया जा सकता है। यह हम उसी हालत में कर सकते हैं, जबकि हम अपने आदर्शों और अपने नेता के प्रति सच्चे रहें, जिसने कि अहिंसा का हथियार हमारे हाथों में दिया है। यह वह हथियार है, जो कमज़ोरी और पराजय में भी व्यक्ति और राष्ट्र का आत्म-सम्मान बचाने की शक्ति देता है। हमारी अहिंसा कमज़ोरों की न हो, बल्कि मज़बूत की हो और हमारे पवित्र उद्देश्य की न्यायपूर्ण नैतिकता के कवच से सुरक्षित हो। इस विश्वास और विनम्र भावना से हमें इस साल आज़ादी की प्रतिज्ञा लेनी चाहिए।

'हरिजन-सेवक', २० जनवरी, १९४०

सस्ता साहित्य मण्डल

'सर्वोदय साहित्य माला' की पुस्तकें

[नोट—× चिन्हित पुस्तकें अप्राप्य हैं]

१—दिव्य जीवन ।=)
२—जीवन-साहित्य १।)
३—तामिल वेद ।।।)
४—व्यसन और व्यभिचार ।।।=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ× ।।।)
६—भारत के स्त्री-रत्न ३)
७—अनोखा× १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ।।।=)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान ।।।)
११—खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र× ।।।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व× ।।।=)
१३—चीन की आवाज़× ।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—विजयी बारडोली× २)
१६—अनीति की राह पर ।।=)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ।।)
२२—अँधेरे में उजाला ।।)
२३—स्वामीजी का बलिदान× ।-)
२४—हमारे ज़माने की ग़ुलामी× ।)
२५—स्त्री और पुरुष ।।)
२६—घरों की सफ़ाई ।=)
२७—क्या करें ? १)
२८—हाथ की कताई-बुनाई× ।।-)
२९—आत्मोपदेश× ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन× ।।।-)
३१—देखो नवजीवन माला
३२—गंगा गोविंदसिंह× ।।=)
३३—श्रीरामचरित्र १।)
३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिंदी मराठी कोष× २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त× ।।)
३७—महान् मातृत्व की ओर ।।।=)
३८—शिवाजी की योग्यता ।=)
३९—तरंगित हृदय ।।)
४०—नरमेध १।।)
४१—दुखी दुनिया ।=)
४२—ज़िन्दा लाश× ।।)
४३—आत्मकथा (गांधीजी) १) १।।)
४४—जब अंग्रेज़ आये× १।=)
४५—जीवन विकास १।)
४६—किसानों का बिगुल× =)
४७—फाँसी ! ।=)
४८—(दे० नवजीवन माला)
४९—स्वर्ण विहान× ।=)

५०—मराठों का उत्थान-पतन २।)
५१—भाई के पत्र १)
५२—स्वगत× ।=)
५३—युगधर्म× १=)
५४—स्त्री-समस्या १।।)
५५—विदेशी कपड़े का मुक़ाबिला× ।।=)
५६—चित्रपट ।=)
५७—राष्ट्रवाणी× ।।=)
५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी ।।।)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी सम्पद् ।=)
६१—जीवन-सूत्र ।।।)
६२—हमारा कलंक ।।=)
६३—बुद्बुद ।।)
६४—संघर्ष या सहयोग ? १।।)
६५—गांधी-विचार-दोहन ।।।)
६६—एशिया की क्रान्ति× १।।।)
६७—हमारे राष्ट्र-निर्माता-२ १।।)
६८—स्वतंत्रता की ओर १।।)
६९—आगे बढ़ो ! ।।)
७०—बुद्ध-वाणी ।।=)
७१—कांग्रेस का इतिहास २।।)
७२—हमारे राष्ट्रपति १)
७३—मेरी कहानी (ज० नेहरू) २।।)
७४—विश्व-इतिहास की झलक (जवाहरलाल नेहरू) ८)
७५—पुत्रियाँ कैसी हों ? ।।)
७६—नया शासन विधान-१ ।।।)
७७—(१) गाँवों की कहानी ।।)
७८—(२-९) महाभारत के पात्र ।।)
७९—सुधार और संगठन १)
८०—(३) संतवाणी ।।)
८१—विनाश या इलाज ।।)
८२—(४) अंग्रेज़ी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ।।)
८३—(५) लोक-जीवन ।।)
८४—गीता-मंथन १।।)
८५—(६) राजनीति प्रवेशिका ।।)
८६—(७) अधिकार और कर्तव्य ।।)
८७—गांधीवाद : समाजवाद ।।।)
८८—स्वदेशी और ग्रामोद्योग ।।)
८९—(८) सुगम चिकित्सा ।।)
९०—प्रेम में भगवान् ।।।=)
९१—महात्मा गांधी ।=)
९२—ब्रह्मचर्य ।।)
९३—हमारे गाँव और किसान ।।)
९४—अभिनन्दन-ग्रंथ १।।) २)

[illegible]

सस्ता साहित्य मण्डल की
'सामयिक साहित्य माला' के
प्रकाशन

१. कांग्रेस इतिहास १९३५-३९ (कृष्णचन्द्र)

२. दुनिया का रंगमंच १९३३-३८ (ज० नेहरू)

३. हम कहाँ हैं ? (ज० नेहरू)

४. युद्ध-संकट और भारत (संकलन)

५. सत्याग्रह : क्यों, कब और कैसे ? (म० गांधी)

६. राष्ट्रीय-पंचायत (संकलन)

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली।